योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 33 जून 2000 अंक 3

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव
विनोद कुमार शर्मा

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	75-00
द्विवार्षिक	रु०	140-00
आजीवन	रु०	750-00

इस अंक में

- पुरुषमुपैति दिव्यम्.................... 1
- अमृतकण.................................. 2
- नरक के द्वार काम, क्रोध और लोभ (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 7
- किमस्ति योगः
  द्वारका प्रसाद शर्मा 10
- सोंठ महौषधि है
  आचार्य चन्द्रहास शर्मा................. 17
- अनादि महासिद्ध योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज 21
- समाधि योग
  डा० स्वामी केशवाचार्य 26
- स्वास्थ्य-चर्चा 31
- सद्गुरू तेरे शरणों में मैं आया
  अंशुमान देव मालवीय................ 36
- योग साधना में जप का महत्व
  सुधाकर उपाध्याय...................... 37

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 33
अंक 3

जून
2000

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मूख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवत् महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

पुरुषमुपैति दिव्यम्

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
ऽस्तं गच्छन्ति नामरुपे विहाय
तथा विद्वान् नामरुपाद् विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्

(मुण्डकोपनिषद)

अर्थात्—जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना—अपना नाम—रूप छोड़कर समुद्र में विलीन हो जाती है, वैसे ही ज्ञानी महापुरुष नाम—रूप से रहित होकर परात्पर दिव्य पुरुष परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाता है— सर्वतोभावेन उन्हीं में विलीन हो जाता है।

अमृत कण

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु-
स्त्रीषपवित्रा हृद्यन्तरादधे।
विद्वान त्स विश्वा भुवनाभि-
पश्यत्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।।

(ऋग्वेद संहिता ९/७३/८)

सत्य (सदाचार) का रक्षक सुकर्मा दबने के लिए नहीं है, उसने हृदय के भीतर तीन पवित्रताओं को धारण किया है! वह सर्वज्ञ प्रभु सब लोकों-धामों-स्थानों को देख रहा है। वह असेवनीय, असदाचारी अव्रतियों को गर्त मे गिरा देता है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

(श्री विष्णु धर्मोत्तरपुराण ३/२५३/४४)

दूसरों के जो आचरण हमें पसंद नहीं, वैसे आचरण हमें दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिये।

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम्।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम्।।

(मनु स्मृति ५/१०५)

शरीरधारी की शुद्धि के लिए ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, जल, अनुलेपन, वायु, कर्म, सूर्य और समय का शुद्ध होना आवश्यक है! इसी प्रकार शरीरस्थ बारह मलस्थानों को भी यथासम्भव शुद्ध रखना सदाचार मे सहायक है।

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः।
द्वारमुद्घाटयन्त्येते मोक्षराजगृहे तथा।।

(योगवाशिष्ठ २/११/५९)

मोक्ष के द्वार पर चार द्वारपाल कहे गये हैं-शम, विचार, संतोष और चौथा सत्संग। इनका भली भाँति सेवन करने पर मोक्षराज गृह के द्वार मुमुक्षुओं के प्रवेश के लिए खुलते हैं।

विशेष लेख

नरक के द्वार काम, क्रोध और लोभ

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भगवान् ने गीता में नरक के द्वार के रूप में तीन बातों को बताया है। भगवान ने कहा-

'त्रिविधम् नरकस्येदं द्वारम् नाशनात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत् त्रयंत्यजेत्'।।

अखिलात्मा त्रिजगत पावन श्री कृष्ण चन्द्र अपने मुखारविन्द से कहते है- काम, क्रोध और लोभ ये नरक के तीन द्वार है। इसलिये योग साधक को इन्हें त्याग देना चाहिये। इनमे पहला नरक का द्वार है **काम।** व्यक्ति जितना-जितना कामनाओं का चिन्तन करता चला जाता है, उसकी प्रवृत्ति उसमें बढ़ती रहती है। मनुष्य सोचता रहता है **इदमद्य मया लब्धम् इमं प्राप्स्ये च मनोरथम् असौ मयाहतः शत्रुर्हनिष्ये चापरान पि।** आज मैंने यह तो प्राप्त कर लिया है अब मुझे यह वस्तु और प्राप्त करनी है। मैंने अमुक शत्रु को मार दिया है अब मैं अमुक को भी मार दूँगा- आदि-आदि बातें सोचता रहता है। वह सोचता है बहुत बड़ा यज्ञ करूँगा, दान करूँगा इससे मेरा बहुत नाम होगा। इस प्रकार से कामनाओं के जाल में फँस जाता है। सबसे मुख्य कामना भोग की वासना कही जाती है। यह इतना बुरा जाल है कि बड़े-बड़े ऋषिमुनि भी इस पर विजय नही पा सके। जिन लोगो को यह निश्चय हो गया कि हम काम विजयी हो गये है, वे भी विजयी नहीं हो पाये। ऋषि, मुनि, सिद्धलोग वशिष्ट, विश्वामित्र भी इस से प्रभावित रहे है।

एक बात मैने तुम्हें बताई थी कि जब योगी योग की सम्प्रज्ञात अवस्था की दूसरी अवस्था विचारानुगत समाधि मे पहुँचता है तो उसके पतन का भय रहता है। यदि उससे आगे निकल जाता है तो वह पतन से परे हो जाता है। ऋषि मुनि जो काम पर विजय प्राप्त करने की स्थिति मे आये तो देवताओं ने उनके सामने अप्सरायें भेज दी। वे उनके सामने जाकर नाच-गान करने लगती। वे लोग भी विलास में पड़ गये और अप्सरायें उनकी सारी शक्ति छीन-छान कर स्वर्ग लोक को चली जाती। ये अप्सरायें इसलिये ही भेजी जाती रही हैं ताकि योगी-ध्यानी व्यक्ति स्वर्ग पर अधिकार न कर ले, देवताओं से आगे न बढ़ जायें। इसलिये योगियो को गिराने के लिये ही उन्हे भेजा जाता है। कामना भोग की वासना संसार मे जो अन्न खाता है उसके अन्दर रहती है। वह छूटती नहीं। गीता के दूसरे अध्याय में भगवान ने कहा है-

'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।'

जो मनुष्य निराहारी भूखा रहता है उसकी विषय वासना हट जाती है किन्तु उसको विषय वासना का रस ज्ञान रहता है। उसे भोग का ज्ञान रहता है उसे ज्ञान रहता है कि भोग के अन्दर

आनन्द रहता है। भूखा रहने के कारण उसकी काम प्रवृत्ति रहे या न रहे यह दूसरी बात है किन्तु भावना यह रहती है कि भोग मे आनन्द रहता है। अखिलात्मा कहते है-**'रसोऽप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तते'** वासना का जो रस है वह भी पर दर्शन के बाद हट जाता है। पर दर्शन वह स्थिति है जिसका वर्णन भगवान पतंञ्जलि ने योग दर्शन मे दूसरे सूत्र में कर दिया है योगश्चित्त वृत्ति **निरोध: अर्थात् चित्तवृत्तियों का नितराम् रोध-समूलोन्मूलना।**

चित वृत्तियॉं रहेंगी नही तो भोग भावना कहॉं से रहेगी ? न रहेगा बाँस न बजेगी बांसुरी। वहाँ पर सवाल किया चित्तवृत्तियॉं नही रहेंगी उसका नाम योग है किन्तु यह स्थिति कैसी होती है ? उस समय जीवात्मा का क्या स्वरूप होता है ? इसका उत्तर अगले सूत्र मे दिया है **'तदा द्रष्टु: स्वरुपेऽवस्थानम्'** उस समय जीवात्मा अपने यथार्थ स्वरूप मे आ जाता है-असली रूप मे आ जाता है उसका असली रूप क्या है ? असली रूप है जिसमे न मन रहता है न बुद्धि रहती है। न कोई गुण धर्म ही रहते है। असली रूप की कोई उपमा नही दे सकता। व्यास भाष्य मे व्यास जी महाराज ने केवल एक बात कही है-प्रश्न आया **''स्वरूप प्रतिष्ठा कीदृशी''** स्वरूप प्रतिष्ठा कैसी होती है ? इसका उत्तर दिया-**''चित्राकित यथा कैवल्ये''** अर्थात् जब आत्मा अपने स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाती है तो उसकी स्थिति वैसे ही होती है जैसे कैवल्यावस्था में ! कैवल्य मायने अकेलापन। योगदर्शन के सिद्धान्तानुसार मुक्ति कैवल्य को ही कहते है। **''सत्व पुरुषयो: शुद्धि साम्ये कैवल्यम्''** जब प्रकृति और पुरुष अपने-अपने स्वरूप में आ जाये तब कैवल्य होता है। भोग वासना की कामना, भोगो के भोगने से कम नही हुआ करती। यह नियम है-

'न जातु कामा कामानामुप भोगेन शाम्यति'

मन से पैदा हुई कामनायें कामनाओं के भोग से हटती नही है प्रत्युत जैसे आग मे घी डालने पर आग और भड़क जाती है उसी प्रकार से कामनाओं के उपभोग से कामनाऍं और बढ़ जाती हैं। इसलिये काम मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। काम ही सारी कामनाओं का सृजन करता है। कोई विरला ब्रह्मचारी जो उर्ध्वरेतस हो जाये-उर्ध्वरेतस का अर्थ है नाभि मण्डल के वीर्य को आकर्षण कर सारे शरीर मे फैला दे। ऊपर को ले जाये। ऐसा जो ब्रह्मचारी है वह कामजयी बन जाता है। यह कामजयी वह बनता है जो विचारानुगत समाधि से आगे निकल जाता है। विचारानुगत तो खतरे की ही जड़ है। उस मे तो स्वर्ग के लालच आ जाते है और वह पथ से च्युत हो जाता है। ये बातें होती है।

ब्रह्मचारी हरिभक्त चैतन्य हमारे बच्चे है हमने उनको जंगलो मे रहकर तपस्या व साधना की आज्ञा दी थी। उन्होंने जंगलो मे खूब तपस्या की। एक दिन वह अपना अनुभव हमें बता रहे थे। मैने तुम्हे कई बार बताया है कि- स्वाध्यायदिष्ट देवता सम्प्रयोग: अर्थात् स्वाध्याय करने से इष्ट के ऋषि मुनियो के दर्शन हुआ करते है। हरि भक्त जंगल मे घूमते हुये कही जा रहे थे। एक स्थान पर उन्हें बहुत लम्बा तड़ॅंगा व्यक्ति मिला। वह अतिवृद्ध दिखाई दे रहा था। बाल उसके अत्यन्त सफेद थे। भौहें लटक कर नीचे आ गई थी। शरीर में एक घाव जैसा भी था। हरि भक्त ने उनसे पूछा-आप कौन है ? आप को यह घाव कैसे लगे है ? वह व्यक्ति कहने लगा-मै महाभारत युद्ध

के समय का दुर्योधन की सेना का एक सिपाही हूँ। युद्ध समाप्त होने के बाद मुझे सिद्ध गुरु की संगति मिल गई जिसके फलस्वरूप मै अजर अमर हूँ। हरिभक्त ने पूछा-आप को घाव क्यो लगे हुये है ? आप तो अजर अमर है शरीर को नया भी कर सकते है। उत्तर में उन्होंने एक बात कही- मेरे शरीर मे ये घाव अर्जुन के बाणो के है। अर्जुन बाण चलाता था और भगवान कृष्ण रथ पर बैठे हुये हँसते रहते थे। इस तरह शरीर पर घाव लगते रहते थे। श्री कृष्ण की याद में इन घावो को रखे हुये हूँ। हरिभक्त चैतन्य ने पूछा-कृष्ण जी कैसे रहते थे ? उन्होंने कहा-उनको क्रोध आते कभी देखा ही नहीं था। वे तो सदा हँसते ही रहते थे। इसके बाद हरिभक्त चैतन्य को कई अनुभूतियाँ हुई। वे विचारानुगत समाधि के योगी थे। वहाँ देवकन्यायें आ गई। पहले तो उन्होंने अपना श्रृंगारमय अभिनय दिखाया। वे अभिनय इसलिये दिखाती है ताकि उनकी शक्लो को और अभिनय को देखकर व्यक्ति मोहित हो जाये और अपने आप पास जाकर पूछने लगे-तुम कौन हो, कहाँ से आयी हो ? किन्तु हरिभक्त चैतन्य पर उनके अभिनय का कोई प्रभाव नही पड़ा। उन्होंने हरिभक्त चैतन्य से कहा-तुम हमारे साथ शादी कर लो। हरिभक्त ने कहा शादी तो मै कर लूँगा; किन्तु क्या तुम इसी प्रकार बनी रहोगी। उन्होंने कहा-नही, हम यहाँ बहुत समय तक नही रह सकती, तुम्हें ही स्वर्ग चलना पड़ेगा। जितने दिन का तुम्हारा पुण्य होगा उतने दिन तुम हमारे साथ रह सकोगे। हरिभक्त ने उनके साथ जाने से मना कर दिया। इसके बाद वे अप्सरायें आकाश मे उड़ गईं और अदृश्य हो गयी।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य को गिराने का काम कामना का ही है। बड़े-बड़े ऊँचे योगी भी जो कामना में ग्रस्त रहे वे यथार्थता को नही पा सके। एक बात यह और याद रख लो। यह कामना विचारानुगत समाधि मे ही प्रबल रहती है। योगदर्शन कहता है-**स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं अनिष्ट प्रसंगात्** अर्थात् स्थानी देवता के बुलाये जाने पर उनकी बात नही माननी चाहिये और मन मे यह अभिमान भी नही रहना चाहिये कि मै अब तो देवताओं का भी पूज्य बन गया हूँ। तीन रास्ते भगवान् ने नरक के बताये है उनमे एक तो है काम। और दूसरा नरक का द्वार है क्रोध-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

काम और क्रोध दोनो रजोगुण से उत्पन्न होते है और साधक के प्रबल बैरी है। मनुष्य एक बार क्रोध करता है। क्रोध के द्वारा उसकी आत्मिक स्थिति तत्काल निकल जाती है। दूसरे का अनिष्ट तो हो जाता है। उसके मुख से निकला शाप फलीभूत हो जाता है उसको भोगना पड़ेगा किन्तु शाप देने वाला भी खाली हो जाता है। जितनी ताकत संचित की, शाप देने पर वह निकल जाती है। क्रोध मे मनुष्य जिसके प्रति जो भावना करता है, यदि वह योगी है आत्मवान है तो शाप अगले पर लग जायेगा। क्योंकि उसके मन में ताकत है। वह पत्थर मार सकता है। शाप लगेगा उधर उसका पुण्य क्षीण हो जायेगा। कामना करेगा तो भोग से पुण्य क्षीण हो जायेगा। क्रोध करेगा तो क्रोध से पुण्य क्षीण हो जायेगा। इसलिये सिद्ध लोग अपने शिष्यों पर शक्तिपात करके जंगलों मे उन्हें निर्बीज समाधि मे बिठा देते है। उनकी वृत्तियाँ नीचे दबी रहती है वरशाप के झमेले का समय ही नही आ पाता। यदि कोई वर-शाप के झमेले मे पड़ेगा तो जनम-मरण का चक्कर बना रहेगा। एक बार शाप

देगा शक्ति सारी निकल जायेगी। थोड़ी देर के लिये मानो तुम्हारा ध्यान लगता है और ध्यान काल में किसी पर क्रोध करते हो तो ध्यान की ताकत खत्म हो जायेगी। बड़े-बड़े सिद्ध लोग भी जो शापादि देते है उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है और जन्म मरण के चक्कर में पड़े रहा करते है। ये काम और क्रोध की बात हुई।

तीसरी बात है लोभ की! लोभ हर व्यक्ति को होता है। हममे भी है और तुम मे भी। मनुष्य यह सोचता रहता है कि मिल गया है, इतना और मिल जाना चाहिये। हमारे आश्रम के लिये इतनी जमीन मिल गई है इतनी और मिलनी चाहिये थी आदि-आदि बाते लोभ की रहा करती है। जो व्यक्ति अपने मन मे यह भावना रखता है चलो ! पैसा आया है-इसे खर्च करना ही करना है इसे ठीक जगह पर लगा देना है, लालच की भावना मन मे नही रहती तो यह उसके बन्धन का कारण नही रहता। लोभ न करने का अर्थ यह नहीं कि पैसा आये तो उसे फेंक दे। पैसा तो रखे किन्तु उसे सत्कर्म मे खर्च करें। एक बार हम एक जगह पर गये। एक भक्त ने हमें निमन्त्रण पर अपने घर बुलाया। पहले यह गाँव का रहने वाला था किन्तु अब बहुत बड़े शहर कलकत्ता मे रहता है। करोड़ो का मालिक है वह। हम लोग भोजन के लिये गये तो ऐसा भोजन बनवाया जो गरीब से गरीब भी न बनवाये। वैसे तो हम घरों मे कच्चा भोजन करते नही है पूरी आदि पक्का भोजन ही लेते है। हम तो पुराने नियम से चलते है। बनवाया तो उसने भोजन पक्का ही किन्तु सब्जी मे पानी की ही भरमार थी। बस ! ज्यादा कहने की बात नहीं। यह क्या था ? सम्पत्ति का लोभ ! इस प्रकार के व्यक्ति का पैसा जमा ही रह जाता है, वे खाली ही चले जाते है।

उनके भाग्य मे ऐसे ही रूखा सूख खाना लिखा रहता है, पैसे जमा खाते में रहते है। उनका समय आता है वे आगे चले जाते है। उनके बेटे खाये, पोते खाये कोई खाये, यह दूसरी बात है। **इसलिये त्रिविधम् नरकस्येदं द्वारं नाशमात्मन:-** अखिलात्मा त्रिजगत पावन मेरे तुम्हारे सब के प्राणो मे वास करने वाले श्री कृष्ण चन्द्र ने यह बात कही है। इन तीनो को साधक को छोड़ देना चाहिये। विषयों की कामना न करें। क्रोध न करे तथा लोभ मे न फँसे। पैसे का लोभ न करें। पैसे ठीक जगह पर खर्च कर दे। 'भूखे पड़े है पड़े रहेंगे। घर में कोई बीमार पड़ा है पड़ा रहेगा। पैसा क्यो खर्च करें बचा रहेगा तो रहा रहेगा'। इस प्रकार का लालच खतरनाक होता है। इसलिये त्रिलोक के चन्द्रमा की आज्ञा है- "तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्"। इन तीनों को छोड़ दें। बस ! तुम लोग भी इन तीनों को छोड़ देना। अपने ध्यानाभ्यास को बराबर बढ़ाओ। यहाँ प्रयाग में जो ध्यान मे बैठता है उसका बहुत पुण्य बढ़ता है। ध्यान मे प्रतिदिन बैठो। यहाँ स्नान करने का पुण्य है ही किन्तु यहाँ इस क्षेत्र मे रहने का भी पुण्य मिलेगा। इस प्रयाग क्षेत्र मे जो जितना भजन कर लेगा वह रेख पर मेख लगवायेगा। वह संसार सागर से पार जाने की कमाई कर लेगा। इसलिये **काम, क्रोध और लोभ** को छोड़कर ध्यान मे बैठो और अपने आप को क्रियाशील बना करके समाधि को प्राप्त करो। श्री प्रभु जी के चरणों को याद करके, उन्हें प्रणाम करके अपने अभ्यास मे बैठ जाया करो। उनकी कृपा बरसती रहेगी, शक्ति मिलती रहेगी। निहाल हो जाओगे, कृतार्थ हो जाओगे। बस ! बार-बार आशीर्वाद।

***

श्री मद्‌भगवद्‌गीता में समाधि योग निरूपण

श्री मद्‌भगवद् गीता एक पवित्रतम एवं महानतम ग्रन्थ होने के साथ-साथ एक सर्वोत्कृष्ट योग शास्त्र है। यह भगवान कृष्ण की ही वाणी नहीं; परब्रह्म परमेश्वर की वाणी है जिसे भगवान कृष्ण ने योग युक्त होकर कहा है। महाभारत युद्ध के पश्चात् एक समय अर्जुन ने भगवान कृष्ण से निवेदन किया कि भगवन् ! आप कृपा कर योगमय गीता को पुनः सुनायें। भगवान ने कहा-अर्जुन! तुमने बहुत गल्ती की है जो इसे ठीक से हृदयंगम नहीं किया। गीता को मैंने योग युक्त होकर कहा था। वह भी परब्रह्म की वाणी थी। इस समय मैं उसे उसी प्रकार से नहीं सुना सकता हूँ।" इस प्रकार से यह प्रमाणित हो जाता है कि गीता परब्रह्म की वाणी है।

योग तत्व का वर्णन यद्यपि प्राचीन समय से ही उपनिषद् एवं वेद में पाया जाता है। वस्तुतः वेद उपनिषद् का सार ही योग तत्व है। उपनिषद् समाधिनिष्ठ ऋषियों की भाषा है जिसमें योग तत्व उसी प्रकार से निहित है जैसे दूध मे घी रहा करता है। योग के सिद्धान्त उपनिषदों में भरे पड़े हैं। किन्तु उनका क्रमबद्ध निरुपण तो भगवान पतंजलि जी महाराज के योग शास्त्र में ही उपलब्ध है। पातंजलि जी का योगशास्त्र एक सूत्र ग्रन्थ है, जिनका भाष्य टीका किये बिना सम्यक् बोध नहीं हो सकता। पतंजलि जी के इस योग शास्त्र में अष्टांग योग के क्रम से योग के प्राप्ति के उपाय भूत विविध साधनों का जहाँ वर्णन किया गया है वही पर समाधि के स्वरूप एवं योग के चरम लक्ष्य का भी वर्णन निर्वीज समाधि के रूप में हुआ है।

श्री मद्‌भगवद्‌गीता में वर्णित योग सम्पूर्ण योग है। इसमें योग के आधारभुत आहार-विहार एवं अन्य यथेष्ट चेष्टाओं का वर्णन मिलता है। ध्यान धारणा एवं समाधि प्राप्ति के विधियों का निरूपण भी इसमें किया गया है। इस प्रकार से की गई लम्बी साधना के फलस्वरूप प्राप्तव्य योग स्थिति का भी वर्णन गीता में स्थल-स्थल पर किया गया है। योग समाधि का आनन्द इन्द्रियों एवं उनके विषयों के आनन्द से सर्वथा भिन्न इन्द्रियातीत आनन्द है। विषयों का आनन्द परिणाम में दुःख, रोग, संताप, निराशा एवं अवसाद को जन्म देता है। किन्तु योग समाधि का आनन्द अमृत के मूल स्रोत की ओर ले जाता है जिस स्थिति के आनन्द का वर्णन शब्दों में किया नहीं जा सकता है। योग के आनन्द का निरूपण करते हुये भगवान कहते है-**'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्'**। अर्थात् योग का आनन्द सात्विक बुद्धि से ग्राह्य है और यह अतीन्द्रिय है। विविध भावनाओं में बह जाने वाले मन एवं इन्द्रियों से वह

योग का सुख अनुभव नही किया जा सकता है। वह एकाग्रचित्त एवं सूक्ष्म बुद्धि से ही अनुभव में आ सकता है। यह स्थिति ही सर्ववृत्ति निरोध रूप समाधि है जिसे उपनिषदों मे इस प्रकार बताया है–

'अहमेव परब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः
समाधि स तु विज्ञेय सर्ववृत्तिविवर्जितः'।

अर्थात् मै ही परब्रह्म, ब्रह्म हूँ। इस प्रकार अन्य सभी वृत्तियों से विवर्जित स्थिति **समाधि** कही जाती है। योग दर्शन में भगवान पतंजलि ने **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** कहकर योग की परिभाषा की है। यह परिभाषा श्रुतियों के समाधि परिभाषा से पूर्णतया मेल खाती है। समाधि की इस अवस्था मे ही जीवात्मा परमात्मा की समतावस्था होती है। आत्मदर्शन का एकमात्र उपाय समाधि है इस बात को प्रमाणित करने वाले बहुत से श्रुति वचन उपलब्ध होते हैं। वृहदारण्यक का एक मन्त्र आया है–

तस्मादेवं विच्छान्तोदान्त उपरतस्तितिक्षुः
समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति।

अर्थात्–साधक सर्वप्रथम श्रुति सम्मत सिद्धान्त के अनुसार शान्त, दान्त, उपरत और तितिक्षु होकर अपने चित्त को आत्मा मे स्थिर करके अपने भीतर ही आत्म प्रकाश को देखता है। चिरकाल तक इसी प्रकार से समाधिजन्य अखण्ड सुख एवं ज्ञान से युक्त पुरुष ही संन्यासी, परमहंस एवं अवधूत कहलाता है।

एवं चिर समाधिजनित ब्रह्मामृतपानपरायणोऽसौ
संन्यासी, परमहंसः, अवधूतो भवति।

इस प्रकार योग युक्त हुआ योगी विगतकल्मष होकर ब्रह्म संस्पर्श को पाता हुआ अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है। इस प्रकार सब ओर से संयमित हुआ चित्त आत्मा मे ही रमण करता है और सब कामनाओं से निःस्पृह हुआ योगी युक्तयोगी कहलाता है।

युक्त योगी के लिये ही गीता के दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ की संज्ञा दी गई है। स्थितप्रज्ञ हो जाने पर आत्मा में ही संतुष्ट रहता हुआ योगी दुःख से कभी विचलित नही होता। और न ही वह सुख की स्पृहा करता है। युक्त योगी अथवा स्थित प्रज्ञ योगी राग-द्वेष, भय और क्रोध से पूर्णतया आगे निकल जाता है ये दोष उसे कदापि छू नही पाते। इन लक्षणों से युक्त योगी को योग दर्शन मे ऋतम्भरा प्रज्ञायुक्त योगी कहा जाता है। इस प्रज्ञा के उदय हो जाने पर योगी की सम्पूर्ण कामनायें नष्ट हो जाती है। योगी आत्मरामी होकर आत्मा में ही रमण करता हुआ अखण्ड सुख का अनुभव करता है। ऐसे योगी को फिर कुछ प्राप्तव्य नही रहता। उसका क्लेश कर्मबन्धन नष्ट हो जाता है। भगवान इस बात की पुष्टि करते हुये गीता मे कहते है–

योग संन्यस्त कर्माणं ज्ञानसंछिन्न संशयम्
आत्मवन्तं न कर्माणि निबहनन्ति धनंजय।

अर्थात् योग समाधि के दृढ़ अभ्यास से जिनके समस्त शुभाशुभ कर्म छूट जाते हैं। योगज ज्ञान से जिनके समस्त संशयों का नाश हो जाता है। ऐसे आत्मनिष्ठ योगी को कर्म बिल्कुल नहीं बाँध सकते।

ऐसी स्थिति वाले योगी के लिये ही योग दर्शन में कहा है ततः **क्लेश कर्म निवृत्तिः'** अर्थात् समाधि के द्वारा परावर दर्शन हो जाने के बाद योगी के अविद्या आदि क्लेश तथा तज्जन्य सभी कर्म निवृत हो जाते हैं।

''सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा''

आदि-आदि बातें समाधि की पराकाष्ठा वाले योगी में ही चरितार्थ होती हैं। इस प्रकार समाधि द्वारा योगी विगत कल्मष हुआ आत्मा में ही रत रहता हुआ ब्रह्मानन्द रस का पान करता रहता है। इस प्रकार के ब्रह्मनिष्ठ योगी का जीवन कृतकार्य हो जाता है और वह संदेह जीवन मुक्ति का आनन्द लेता है।

इस प्रकार ठीक प्रकार से मन्थन करके देखा जाये तो भगवान श्री कृष्णचन्द्र का गीता में अमर सन्देश यही है कि योग साधना के द्वारा समस्त दुःख द्वन्द्व को काटकर मनुष्य अपने अभयपद में प्रतिष्ठ हो जाये ताकि उसका जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि रूप दोष सदा-सदा के लिये छूट जाये। तभी जीव अखण्ड आनन्द, निरामय अभय पद को पा सकता है। फिर उसे क्लेश कभी नहीं व्यापते। यही परम पुरुषार्थ है। फिर जीव, जीव न रहकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ऐसी स्थिति प्राप्त योगी के लिये ही गीता में भगवान ने स्थल-स्थल ब्रह्म **भूयाय कल्पते, मद्भावायोपपद्यते, मद्भावं सोऽधिगच्छतिन ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति** आदि आदि पदों का प्रयोग किया है। यही वह परम पद है जहाँ पहुँच कर जीव कभी लौटता नहीं।

गीता में भगवान ने जहाँ शरीर, प्राण एवं मन को स्थिर व एकाग्र करके समाधि स्थिति की बात कही है वहीं पर उन्होंने व्युत्थान दशा में भी वृति ब्रह्माकार रहे इसके लिये अर्जुन से **''तस्मात् सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन, तथा तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च''** की घोषणा की है अर्थात् कर्म करते हुए भी अपने आराध्य एवं इष्ट का चिन्तन करता रहे तो मनुष्य योग युक्त बना रह सकता है। इस प्रकार भगवान ने समाधि एवं व्युत्थान दोनों अवस्थाओं में मन को युक्त रखने का उपदेश दिया है।

***

किमस्ति योगः

(अष्टाविंशतिः श्रृंखला)

रचनाकार : द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ।

श्री गुरुदेव के कृपा प्रसाद से प्रस्तुत लेख व रचना 'किमस्ति योगः' शीर्षक के अन्तर्गत अट्ठाईसवी श्रृंखला के रूप मे आ रही है। इस लेख मे विभूतिपाद के समस्त शेष सूत्रों को सन्निविष्ट कर लिया गया है।

पूर्व की भाँति इस लेख मे श्री गुरुदेव के प्रति कृतज्ञभाव बुद्धि से स्वरचित श्लोकों से मंगलाचरण करते हुए तत्पश्चात् ही लेख के कलेवर का श्रीगणेश करेंगे।

(१) श्री गुरोः स्मरणं पुण्यं, सर्वाभीष्टफलप्रदम्।
शिष्यस्य सफलं जन्म, ध्यातं येन गुरोः पदम्।।

(२) अज्ञातं यद् यद् भवति, ज्ञातं तत्सकलं भवेत्
अशुभं दूरमपयाति, शुभत्वं प्रतिपद्यते।

(३) कथं नैव स्मरेन्नित्यं, सर्वदा सर्वथा पुनः।
गुरोश्चरणौ शरण्यौ, अघपाप विनाशनौ।

(४) आरभेऽतः गुरुं स्मृत्वा, योगसूत्राणि तानि हि।
अग्रागतानि क्रमशः, भाषायुक्तानि पूर्ववत्।।

(उक्त श्लोकों का अर्थ स्वतः स्पष्ट है)

इस लेख में निम्नांकित सूत्रों का समावेश किया गया है उसी क्रम से श्लोकों की रचना हुई है। श्लोकों के पश्चात् हिन्दी भाषा मे रूपान्तरण किया गया है।

- मैत्र्यादिषु बलानि।
- बलेषु हस्ति बलादीनि।
- प्रवृत्यालोकन्यासात् सूक्ष्म व्यवहित प्रकृष्टज्ञानम्।
- भुवनज्ञानं सूर्य संयमात्।
- चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्।
- ध्रुवे तद्गतिज्ञनिम्।
- नाभिचक्रे कायव्यूह ज्ञानम्।

- कण्ठ कूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः।
- कूर्म नाड्यां स्थैर्यम्।
- मूर्ध ज्योतिषि सिद्धदर्शनम्।
- प्रातिभाद्वा सर्वज्ञम्।
- हृदये चित्त संवित्।
- सत्व पुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयो: प्रत्यया विशेषो भोगः परार्थात्स्वार्थ संयमात्पुरुषज्ञानम्।
- ततः प्रातिभश्रावणे वेदनादर्शास्वाद वार्ता जायन्ते।
- ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।
- बन्धकारण शैथिल्यात्परचित्त वेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः।
- उदानजयाज्जल पंक कण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च।
- समान जयाज्ज्वलनम्।
- श्रोताकाशयो: सम्बन्ध संयमाद् दिव्यश्रोत्रम्।
- कायाकाशयो: सम्बन्ध संयमाल्लघुतूल समापत्तेश्चाकाशगमनम्।
- बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः।
- स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थतत्व संयमात् भूतजयः।
- ततोऽणिमा प्रादुर्भाव कायसम्पन्तद्धमनिभिघातश्च।
- रूपलावण्य बल वज्र संहनन त्वानि कायसम्पत्।
- ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च।
- सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च।
- तद्वैराग्यादपि दोष बीजक्षये कैवल्यम्।
- स्थान्युप निमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्ट संभवात्।
- क्षण तत्क्रमयो: संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्।
- जातिलक्षण देशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्य योस्तयो: प्रतिपत्तिः।
- तारकं सर्व विषयं सर्वथा विषयक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्।
- सत्वपुरुषयो: बुद्धिसाम्ये कैवल्यम्।

(५) योगी यदा कस्मिंश्चिदपि पदार्थे, निजसंयममा कर्तुं समर्थः।
तदा संयमात्तस्मिन्वस्तुजाते, तदर्थ सिद्धीः कथिता यथाक्रमात्।।
(६) मैत्र्यादिषु संयममादधानो, योगी समाप्नोति हि मित्रताबलम्।
हस्ती बलेषु कृतसंयमाद्धि, तत्तन्निभमिभसमं बलमाप्नुयात्सः।।
(७) एवं तथा वैनतेये प्रभञ्जने, कृते संयमे योगिना चेत् स्वयं हि।
तयोः समौ बलगुणौ प्रभवो भवेत्सः, तथैवं फलं स्यादपरेषु कल्प्यम्।।
(८) ज्योतिष्मत्याश्च प्रकृतेः, प्रकाशापतनान्तथा।
सूक्ष्म व्यवहिते पदे, प्रकृष्टोऽपि प्रभासते।।
(९) सूर्ये तथा संयमनात्, चन्द्रेऽपि तत्कृते तदा।
ज्ञानं सर्वभुवनानां, नक्षत्राणां क्रमेण हि।।
(१०) ध्रुवे संयमनाद्वापि, नाभिचक्रे च संयमात्।
तारागतीनां ज्ञानञ्च, स्थितिर्वपुषः क्रमात् वै।।
(११) तथैव कण्ठकूपे च, कूर्मनाड्यां च संयमात्।
क्षुत्पिपासा निवृत्तिस्तु, योगी स्थैर्यमवाप्नुयात्।।
(१२) मूर्ध्नश्च ज्योतिषि कृते, संयमादेव योगिनम्।
दर्शनं सिद्ध पुंसाञ्च, जायते नात्र संशयः।।
(१३) प्रातिभे ज्ञानसंजाते, सर्वज्ञाता भवेन्नरः।
हृदि संयमनाच्चैव, चित्तज्ञानं प्रकाशते।।
(१४) सत्त्वमप्यथवा बुद्धि पुरुषो भिन्नतां गतः।
यदा द्वयोरभेदस्तु, ज्ञानं तत्परिगद्यते।।
(१५) परार्थप्रतीतौ स्याच्चेत्, स्वार्थप्रत्यय एव हि।
संयमे तत्कृते योगी, आत्मज्ञानं प्रपद्यते।।
(१६) तत्स्वार्थे संयमादेवं, आयान्ति सिद्धिजा गुणाः।
प्रतिभा, श्रावणं चैव, वेदनादर्शरूपकाः।।
(१७) आस्वादश्च तथा वार्ता, षड्गुणाः प्रभवन्ति हि।
प्रतिभायां समुत्पन्ने, सूक्ष्मे व्यवहिते तथा।।

(१८) प्रकृष्टानां पदार्थानां, ज्ञानं संजायते तदा।
श्रावणे दिव्यश्रवणं, दिव्यस्पर्शं वेदनायाम्।।
(१९) आदर्शे तु दिव्यरूपं, दिव्यरसं तु आस्वादे।
वार्तायां दिव्यगन्धस्य, ज्ञानमापाद्यते तदा।।
(२०) समाधिसिद्धौ विघ्नानि, प्रगदिताः षट्सिद्धयः।
भवन्त्येताश्च व्युत्थाने, सिद्धयो योगिनां कृते।।
(२१) उदान वायोर्जयात्, जल पंक कंटकादिषु।
असंगस्तथोत्क्रान्तिश्च, योगिनः प्रतिपद्यते।।
(२२) संयमात्समानवायोः, तथा च तज्जयादपि।
शरीरं योगिनश्चैव, दीप्तिमदिति निश्चितम्।।
(२३) कर्णस्य तथा नभसः, संबंधसं यमात्तथा।
दिव्य शब्द श्रवणास्य, सिद्धिः संजायते तदा।।
(२४) शरीराकाशयोर्मध्ये, स्थापनात्संयमस्य वै।
लघुतूलादिकं चैव, स्यान्नभोगमनं तदा।।
(२५) या वृत्तिस्तु वपुर्बाह्या, मनस्येवा प्रकल्पिता।
महाविदेहा वृत्तिःसा, प्रकाशावरणक्षयी।।
(२६) पंचभूतेषु स्थूलं यत्, रूपंच यत्स्वरूपकम्।
सूक्ष्म मन्वर्थ तत्वं यत्, भूतजयाय कल्पते।।
(२७) ततोऽणिमादि सिद्धीनां, प्रादुर्भावो भवेत्तदा।
भूतानां धर्मबाधा च, नश्यति नात्र संशयः।।
कायसंपदपि तथा, योगी प्राप्नोति निश्चितम्।।
(२८) ततो जयादिन्द्रियाणां, तिस्र एतास्तु सिद्धयः।
योगी तु समवाप्नोति सूत्रेऽस्मिन्समुदीरितम्।।
(२९) मनोजवित्वं प्रथमम्, विषयाणां द्वितीयन्तु।
विना वपुरनुभवः, तृतीयं प्रकृतेर्जयः।।
(३०) बुद्धिपुरुषयोर्भेदः ज्ञायते योगिना यदा।
सर्वभावाधिष्ठातृत्वं, सर्वज्ञातृत्वमेव हि।।
योगी तु समवाप्नुयात्।।

(३१) समुत्पन्ने तु वैराग्ये, विवेकख्यातिनापि च।
विनश्यति दोषबीजं, योगी कैवल्यमश्नुते।।
(३२) स्थानिनां लोकपालानां, आहूते वा निमन्त्रणे।
तेषां संगोऽपित्याज्य: स्यात्, दर्पदृप्तोऽपि नोभवेत।।
(३३) योगिनां यत्क्षणं कालं, तथा यत तत्क्रमं भवेत।
कृतो वै संयमस्तत्र, ज्ञानं विवेकजं स्मृतम्।।
(३४) जातिलक्षणदेशानां, भेदात्, यत्तु द्विवस्तुनो:।
जायते भेद ज्ञानं नो, सादृश्यं यत्प्रतीयते।।
(३५) तेषां भेदस्य ज्ञानं वै, विवेकादेव जायते।
सूत्रेऽस्मिन् पतञ्जलिना, अर्थो ह्येषो निषापित:।।
(३६) किं स्यात् विवेकजं ज्ञानम्, विवक्षयां पतञ्जलि:।
सूत्रमेतच्चकारेति, तारकं सर्वविषयम्।।
(३७) तारकं सर्व विषयं, सर्वथा विषयक्रमम्।
क्रमं विनैव ज्ञानं यत्, तज्ज्ञानं तु विवेकजम्।।
(३८) द्वयोर्बुद्धि पुरुषयो, शुद्धौ साम्ये तुजातयो:।
योगी वै समवाप्नोति, कैवल्यमीप्सितं पदम्।।
(३९) विभूति पादस्याध्याय:, समाप्तिंगतवानिह।
निमित्तमात्रश्चाहन्तु, कर्ता धर्ता स्वयं गुरु:।।
भगवता पतञ्जलिना कृते योग दर्शने।
विभूतिपाद: पर्यवासित:।।

भाषानुवाद

मैत्री आदि में संयम करने से मैत्री आदि बल प्राप्त होते हैं। हाथी आदि के बलों में संयम करने से उन्हीं के समान बल प्राप्त होता है। इसी प्रकार गरुड़ और पवन में संयम करने से उनके समान बल प्राप्त हुआ करते हैं।

ज्योतिष्मती प्रकृति का प्रकाश डालने से सूक्ष्म (जो इन्द्रियों से नहीं जाने जायें) व्यवधान वाली (आड़ में रहने वाली) विप्रकृष्ट (दूरी की) वस्तुओं का ज्ञान होता है।

सूर्य में संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान होता है।

चन्द्रमा में संयम करने से सब नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान होता है।

ध्रुव में संयम करने से ताराओं की गति का ज्ञान होता है।

नाभिचक्र में संयम करने से शरीर की स्थिति का ज्ञान होता है।

कंठ-कूप में संयम करने से भूख-प्यास दूर होती है।

कूर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता प्राप्त होती है।

मूर्धा की ज्योति में भी सिद्ध दर्शन प्राप्त होता है।

अथवा प्रातिभ ज्ञान से सर्वज्ञाता होता है।

हृदय में संयम के द्वारा चित्त का ज्ञान होता है।

सत्व (बुद्धि) और पुरुष जो दोनों परस्पर भिन्न है, इन दोनों का अभेद ज्ञान भोग। उसमें से परार्थ प्रतीति से भिन्न जो स्वार्थ प्रतीति है उसमें संयम करने से पुरुष का ज्ञान होता है।

उस स्वार्थ संयम से प्रतिभा, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद, वार्ताज्ञान उत्पन्न होता है।

प्रतिभा- इस ज्ञान से सूक्ष्म, व्यवहित तथा प्रकृष्ट वस्तुओं की जानकारी होती है।

श्रावण- उसमें दिव्य सुना जाता है।

वेदना- दिव्यस्पर्श का अनुभव होता है।

आदर्श- दिव्य रूप का अनुभम होता है।

आस्वाद- दिव्यरस का अनुभव होता है।

वार्ता- दिव्य गन्ध का अनुभव होता है।

उपर्युक्त छहों सिद्धियाँ समाधि सिद्धि (पुरुषज्ञान प्राप्त करने) में विघ्न है, व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं।

बन्ध के कारण शिथिल करने से एवं चित्त की गति का सम्यक् प्रकार ज्ञान होने से चित्त का (सूक्ष्म शरीर का) दूसरे के शरीर में प्रवेश होता है। उदान के जीवन से जल, कीचड़, काँटा आदि से असंग (साधक के शरीर का संयोग नहीं होता) रहना और ऊर्ध्वगति होती है।

समान वायु को संयम द्वारा जीत लेने से योगी का शरीर दीप्तिमान् होता है।

कान एवं आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य श्रोत्र होते हैं।

शरीर आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से और हल्की वस्तु (रुई आदि में) संयम करने से आकाश गमन की शक्ति हो जाती है। शरीर के बाहर अकल्पित वृत्ति महाविदेहा है। उससे प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है।

पाँच भूतों के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थतत्व पर संयम करने से भूतों पर जय प्राप्त होती है।

तब भूतजय के बाद अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। एवं सर्वभूतों के धर्मों से बाधा नहीं होती और कायसम्पत् प्राप्त होती है।

रूप, लावण्य और बल तथा वज्र के समान दृढ़ता कायसम्पत है। उस (इन्द्रिय जय) से मन के समानगति, शरीर के बिना विषयों का अनुभवशील होना तथा प्रकृति पर अधिकार प्राप्त कर लेना, तीनों सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

बुद्धि व पुरुष की भिन्नता मात्र का ही केवल ज्ञान होता है-उसी योगी को सारे भावों का मालिक होना और सर्वज्ञ होना प्राप्त होता है। उस विवेक ख्याति से भी वैराग्य होने पर दोष (क्लेष) बीजों के नाश होने पर कैवल्य (मोक्ष) होता है।

स्थानियों (देवताओं अथवा लोकपालों) के बुलाने पर न तो संग ही रहना चाहिये, न अभिमान करना चाहिये। क्योंकि पुनः अनिष्ट (क्लेश) प्राप्त होने की संभावना रहती है।

क्षण और उसके क्रम में संयम से विवेकज्ञान होता है।

जाति, लक्षण और देश भेद से जिन दो वस्तुओं का भेद ज्ञान नहीं होता एवं दोनों वस्तुऐं तुल्य मालूम होती हैं, उनके भेद का ज्ञान विवेक ज्ञान से ही होता है।

तारक, अर्थात् तारने वाला, सबको जानने वाला, सब प्रकार से जानने वाला, बिना क्रम के एक साथ ज्ञान को विवेकज ज्ञान कहते है। बुद्धि एवं पुरुष दोनों की समान शुद्धि होने पर कैवल्य स्थिति प्राप्त होती है।

इस स्थान पर अब विभूतिपाद (तृतीय अध्याय) समाप्त हो गया है। इस लेखन में मैं (द्वारकाप्रसाद शर्मा) मात्र निमित्त हूँ। करण-कारण श्री गुरुदेव की सूक्ष्मसत्ता ही है।

-जय श्री गुरुदेव-

***

सौंठ महौषधि है

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

भारतीय जीवन पद्धति सर्वाधिक वैज्ञानिक पद्धति है। हमारा खान-पान, वेष-भूषा, रहन-सहन तथा धार्मिक क्रियायें समस्त सृष्टि के चक्र का सन्तुलन बनाते हुए देश-काल परिस्थिति के अनुसार हमारे शरीर के स्वास्थ्य को रोगमुक्त बनाने में सहायक है। इसमें प्रयुक्त होने वाले मसाले- नमक, कालीमिर्च, लालमिर्च, धनियाँ, हल्दी, सोंठ, जीरा, अजवायन, कलोंजी, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, दालचीनी, तेजपात, सेंधानमक, जायफल, जवाखार, प्याज, लहसुन, हींग, अमचूर, सोडा, मैथीदाना आदि तथा साग-सब्जियाँ, तिल का तेल, सरसों का तेल, मूंगफली का तेल, देशी घी, छाछ, दही-मट्ठा, दूध, मलाई, गुड़, देशी शक्कर आदि सभी विभिन्न रोगों की औषधियाँ हैं। इनके ठीक-ठीक प्रयोग करने का कौशल परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे घरों में माताओं व बहिनों में चला आता था किन्तु वर्तमान पीढ़ी धीरे-धीरे अपाहिज और डाक्टरों की गोलियों, केप्सूलों तथा इंजेक्शनों पर जीने में अपने को धन्य मानती है। अपनी परम्परागत, हजारों सालों से परीक्षित भोजन प्रणाली तथा जीवन-पद्धति को भूलती चली जा रही है। होटलों में जाकर भोजन करना सभ्यता और शान की निशानी मानी जाती है। उन्हें यह तक ज्ञान नहीं है कि हमारे शरीर को स्वस्थ रहने के लिए किस मौसम में किस दिन कैसा भोजन चाहिये। उस भोजन में क्या-क्या मसाला पड़ता है, और क्यों पड़ता है-यह आज की पीढ़ी को जानने की इच्छा भी खत्म होती जा रही है।

हमारी पाकशाला के मसालों में सोंठ एक मुख्य घटक है। हमारे पूर्वजों ने इसे रसोई में अनिवार्य अंग के रूप में क्यों स्थान दिया ? क्या आपने कभी इस पर विचार किया है ! नहीं, तो अब इसके अपार गुणों को जानकर इसका ठीक-ठीक प्रयोग करना शुरू कर दीजिए ताकि नीरोग रहकर योग साधना कर अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। वर्तमान पीढ़ी के लोग भोजन पकाने में स्वच्छता और पवित्रता का भाव भूलते जा रहे हैं। खाने का ढंग पशुओं से भी बदतर होता जा रहा है। आँतों यकृत (Liver) प्लीहा (Spleen) अग्नाशय आदि को ठीक स्थिति में रखकर पालती मारकर बैठकर भोजन करने की पद्धति को आज पिछड़ापन माना जाता है। आयुर्वेद का सिद्धान्त है- **आर्द्रपादौ तु भुञ्जीत'** अर्थात् हाथ पैर धोकर तसल्ली से बैठकर भोजन करने से शरीर और मन स्वस्थ रहता है। पर आज हम गिद्ध भोजन (बफेसिस्टम) के चक्कर में पड़ गये है।

सोंठ के विभिन्न नाम-आयुर्वेद के आचार्यों ने गिलोय, सोंठ, पिप्पली, आमला और हरड़ को स्वास्थ्य लाभ के लिए सर्वाधिक उपयोगी माना है। त्रिफला और त्रिकुटा तो प्रायः अनेकों रोगों में काम आता है। सोंठ के शास्त्रीय नाम है-महौषधि, विश्वभेषज, शिवा, शुण्ठी, नागर, शृंगवेर, विश्व

(त्र्यूषण में सोंठ, मिर्च पीपल तीन अंग है, उनमें सोंठ मुख्य है जिसे विश्व कहते हैं।) औषध (ओष बल और ओज को कहते हैं, उसको धारण कराने की सामर्थ्य देने वाली) शरीरगत सभी आयुओं का अनुलोमन करने के कारण इसे महौषधि कहा जाता है। यह कफहर और वातहर होने से कल्याण कारिणी है अतः शिवा कही जाती है।

सोंठ के कतिपय अनुभूत प्रयोग

१. सोंठ घृत निर्माण विधि–घी–एक किलो, सोंठ २५० ग्राम तथा जल चार लीटर लेकर मन्द–मन्द आग पर पकायें। पानी जल जाय और घी रह जाय। बस वह दवा तैयार है।

प्रयोग–वायु का अनुलोमन करता है। खांसी (सूखी) श्वास, (दमा) ज्वर–पीड़ा ग्रहणी और पाण्डु रोग नाशक है। मात्रा प्रकृति आयु तथा शरीर के बलाबल को देखकर निश्चित करनी चाहिए।

२. जठराग्नि प्रदीप्त करने तथा खाया हुआ मल पचाने के लिए तथा आमदोष युक्त ग्रहणी रोग को शान्त करने के लिए समान भाग में गिलोय + अतीस – सोंठ + नागर मोथा लेकर काढ़ा बनाकर प्रातः सायं आधा कप पिलाया जाय।

३. सोंठ के स्वरस या क्वाथ में शहद मिलाकर सेवन करने से खांसी और श्वास (दमा) नष्ट होता है।

४. सोंठ के साथ छोटी पीपल का चूर्ण मधु मिलाकर सेवन करने से विषम ज्वर का नाश होता है। यदि पुराना ज्वर हो तो सोंठ, नागरमोथा, बड़ी कटेरी, गिलोय और आंवले का काढ़ा बना शहद के साथ ले उसमें छोटी पीपल का चूर्ण भी मिला ले।

५. सोंठ, गिलोय, काली मिर्च, अडूसा, हल्दी, धनियाँ, भारंगी–इन सब को समान मात्रा में लेकर काढ़ा बनाकर श्वांस रोगी को सेवन कराने से आरोग्य लाभ होता है।

६. सोंठ, पीपल (कृष्णा) पिप्पली मूल, बहेड़ा, सब को समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। उसे मधु के साथ सेवन करने से भयंकर खांसी दूर होती है।

७. त्रिकुट (सोंठ, काली मिर्च, पीपल) का चूर्ण गुड़ और घी के साथ मिलाकर सेवन करने से खांसी से भी मुक्ति हो जाती है।

८. सोंठ और भारंगी का काढ़ा, कास और श्वास रोग के लिए निहायत मुफीद है।

९. सोंठ तथा गिलोय को मिलाकर काढ़ा बनाकर पीने से आमवात का नाश होता है। आमवात से ही गठिया, जोड़ों में दर्द, कमर दर्द और पेट में दर्द होता है।

१०. सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, धुमासा–इनका क्वाथ वात ज्वर में हितकर है। तथा नागर मोथा, अडूसा , सोंठ धुमाया–इनका काढ़ा कफ ज्वर में हितकर है।

११. सोंठ पित्त पापड़ा, नागरमोथा गिलोय चिरायता समान मात्रा में लेकर इनका काढ़ा बना

लें। यह वातपित्त ज्वर के रोगी को हितकर है। यह काढ़ा पंचभद्र कहा गया है।

१२. आम दोष के कारण उदर विकार होने पर रात्रि को सोते समय गुड़ में मिलाकर सोंठ का सेवन करके, ऊपर गर्मजल पीने से उदर विकार ठीक होते हैं।

१३. सन्निपातज ज्वर के बाद होने वाला कर्णमूल शोथ नाशक लेप इन द्रव्यों के संयोग से निर्मित होता है-चित्रक की छाल, सौंफ, सोंठ, कायफल, सभी को समभाग लेकर पानी डाल पीसकर कर्णमूल पर लेप करें।

१४. सभी प्रकार के दस्त (अतिसार) दूर करने में कुटज, अतीस, चिरायता, कुटकी, गिलोय, नागरमोथा और सोंठ, नागरमोथा अतिलाभकर है।

१५. सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, बेल की गिरी, धनियाँ-इनका चूर्ण अतिसार, मन्दाग्नि, आमदोष तथा सभी प्रकार के शूलों को नष्ट करता है।

१६. गुड़ तथा सोंठ का चूर्ण मिलाकर नस्य लेने से हिचकी रोग नष्ट होता है।

१७. सोंठ के चूर्ण के साथ गोमूत्र पीने से कामला रोग (jaundice) नष्ट होता है।

१८. सोंठ का काढ़ा श्वास रोग को शान्त करता है।

१९. सोंठ, हरड़ तथा नागरमोथा समभाग लेकर चूर्ण बना लें। चूर्ण से दुगुना पुराना गुड़ मिलाकर गोली बना लें। उन गोलियों को मुँह में रखकर धीरे-धीरे चूसते रहने से खांसी और दमा रोग दूर हो जाता है।

२०. कष्टप्रद ग्रहणी रोग (पेचिश, दस्त) में सोंठ, चित्रक, चव्य, तथा बेल की गिरी इन सब का चूर्ण बनाकर मट्ठे के साथ (छाछ) सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

२१. सोंठ, धाय के फूल, मोचरस तथा अजवायन का चूर्ण मट्ठे (छाछ) के साथ सेवन करने से तीव्र अतिसार नष्ट होता है।

२२. सोंठ, धनियाँ, नागरमोथा, बेल की गिरी तथा नेत्रवाला का काढ़ा बनाकर पीने से अतिसार में लाभ होता है।

२३. सोंठ, मिरच तथा पीपल (त्रिकुट) के चूर्ण के साथ मट्ठा पीने से शीत ज्वर शान्त होता है।

२४. सोंठ, नागरमोथा, चिरायता, सारिवा, पिटवन, छोटी कटेरी, बनभटा तथा गोखरू का क्वाथ वात-पित्त ज्वर शान्त करता है।

२५. सोंठ, नेत्रवाला, लालचन्दन तथा पित्त पापड़ा का क्वाथ पीने से पित्त ज्वर में आराम होता है।

२६. सोंठ, गिलोय तथा पिप्पलामूल का क्वाथ वात ज्वर नाशक है।

२७. सोंठ, अडूसा, नागरमोथा तथा यवासा का क्वाथ कफ ज्वर नाशक है।

२८. सोंठ, गिलोय, मोथा तथा यवासा का क्वाथ बात ज्वर नाशक है।

२९. जो सोंठ का क्वाथ प्रतिदिन पीता है उसकी भोजन के प्रति इच्छा बढ़ती है, चित्त में प्रसन्नता, आँखों में ज्योति आ जाती है। मन्दाग्नि जुकाम, दमा, खांसी का नाश होता है। वाणी सुरीली हो जाती है।

३०. सोंठ + बनमेंटी का क्वाथ श्वास रोगी को रामबाण है।

३१. सोंठ के चूर्ण के साथ गोदुग्ध पीने से तीव्र कामला रोग (पीलिया) नष्ट हो जाता है।

३२. गिलोय के क्वाथ में सोंठ का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से आमवात दूर होता है।

३३. सोंठ और चिरायता का क्वाथ पीने से शरीर का शोथ (सूजन) दूर हो जाती है।

३४. सोंठ, मिर्च और पीपल समान भाग मट्ठे में डालकर पीने से कफ विकार दूर होता है।

३५. सोंठ, इलायची का चूर्ण २-२ भाग शहद ३ भाग, घी ५ भाग, गाय के दही और शक्कर के साथ कलई वाले बर्तन में रखकर खाने से प्यास रोग दूर होता है।

३६. सोंठ + मिर्च + पीपल + सेंधा नमक समान भाग लेकर चूर्ण करके छाछ में मिलाकर पीने से अर्जीण रोग दूर होता है।

३७. सोंठ + पीपर + पीपरामूल + चवक + चिडाकब (पंचकोल कहा जाता है।) छाछ में डालकर पीने से पेट का भारीपन दूर होता है।

***

आप जितना कुछ देंगे उसका हजार गुना होकर वह आपके पास लौट आयेगा। इसके लिये धीरज रखना आवश्यक है। हमारा जन्म देने के लिये है लेने के लिये नहीं। जो कुछ भी प्राप्त हो उसे उदारता पूर्वक खुशी-खुशी बांटते चलो। सुखी जीवन का यही एक राजमार्ग है।

अनादि महासिद्ध योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

पूर्ण चन्द्र पन्त शास्त्री

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

अल्मोड़ा हिमालय की सर्वोच्च शिखर नन्दादेवी की तलहटी पर बसा हुआ एक सुरम्य पर्वतीय नगर है। जहाँ अयोध्या नामक स्थान पर एक अवधूतानी रहती थी। वह योग जिज्ञासु और तपस्विनी थी किन्तु ढोंगी गुरूओं से बहुत परे शान्त थी। परमेश्वर के दर्शन की उत्कट अभिलाषा से उसने एक कर्मकाण्डी महात्मा को अपना गुरू बनाया जो ईश्वर दर्शन कराने का लालच देकर उससे तीन वर्ष तक सेवा करवाता रहा। बाद मे शालिग्राम की पिण्डी का दर्शन कराकर उसे बच्चों की भाँति बहकाने लगा। तब वह अवधूतानी निराश होकर वहाँ से चली गई और एक वेदान्ती महात्मा की शिष्या बन गई। उस महात्मा ने सिर मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र पहनाकर उसे सन्यासी बना लिया। वह वर्षों तक उस नये गुरू की सेवा करती रही, किन्तु वहाँ भी उसे ''अहम् ब्रह्मास्मि'' के शाब्दिक ज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिला। अतः वह बहुत दुःखी थी, इसी बीच उसे योगेश्वर प्रभु रामलाल जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसने आपको अपनी व्यथा सुनाई तो आपने दयार्द्र होकर उसे योगमार्ग मे दीक्षित कर दिया और तीव्र शक्तिपात द्वारा उसी क्षण उसके ज्ञान-चक्षु खोल दिये। परिणामस्वरूप वह उसी समय से सिद्धयोगिनी बन गई। उसे समाधि के साथ-साथ हर प्रकार की योगसिद्धियाँ प्राप्त हो गई उस देवी पर कृपा करके प्रभु जी कुछ दिन अल्मोड़ा की सुरम्य वादियों में विचरण करते रहे। फिर वापस काठ गोदाम लौटकर वहाँ से चुपचाप जसपुर चले गये। जसपुर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र (नैनीताल जिले का मैदानी भाग) में स्थित एक छोटा सा कस्बा है, जो कि काठगोदाम से लगभग १०० कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

कुम्हार बालक पर कृपा

जसपुर मे किसी मन्दिर मे प्रभुजी का एक संस्कारी बालक जो जाति से कुम्हार था प्रभु दर्शनों के लिये कई महिनों से घोर तप और स्वाध्याय कर रहा था। उसी को कृतार्थ करने के उद्देश्य से प्रभुजी ने जसपुर मे पदार्पण किया था। आपने दर्शन करने के बहाने मन्दिर मे प्रवेश किया। भक्त बालक उस समय वहाँ नही था। अतः भव्य मन्दिर के प्रांगण मे बैठ गये। थोड़ी ही देर बाद वह वहाँ आ गया। प्रभुजी को पहचानते देर न लगी। आपने उसे बड़े प्यार से अपने पास बैठाया और पूछा-क्या तुम्हें खेचरी सिद्ध है ? बालक ने भोलेपन से कहा-खेचरी खूचरी तो मै कुछ नही जानता। मै कुछ दिन किसी महात्मा जी के साथ रहा। उन्होंने मुझे कुछ योग क्रियाये सिखायी तथा ध्यान योग की विधि बताई। बाद मे विदाई के समय उन्होंने कहा-''हम जो कुछ जानते थे वह तुम्हे बता दिया है। अब आगे का काम तुम्हारे गुरू करेंगे। तुम्हारे गुरू पंजाब के रहने वाले एक कुलीन ब्राह्मण है, वे गोरे वर्ण के और ऊँचे कद के है तथा उनके माथे पर घाव का निशान है। तुम इन चिन्हों को

देखकर उन्हे पहचान लेना"। वह भाव विभोर होकर यह सब कहता जा रहा था। उधर प्रभु जी उसकी बातों को सुनकर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। यह देख बालक को कुछ सन्देह हुआ। उसने गौर से आपके माथे को देखा तो उसे वही घाव का निशान नजर आया जो उसे बताया गया था। वह प्रसन्नता से उछल गया और "आप ही मेरे गुरुदेव है, आप ही मेरे गुरुदेव है" ऐसा कहता हुआ आपके चरणारविन्दों से लिपट गया। वह बहुत देर तक चरणों मे पड़ा रहा जब कहने पर भी वह नहीं उठा तो आपने स्वयं उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उसी समय उस पर तीव्र शक्तिपात करके उसे पूर्ण योगी बना दिया। उसे समाधि मे बैठाकर प्रभुजी वहाँ से मुरादाबाद की ओर प्रस्थान कर गये।

योगाभ्यासी महात्मा देवराहा बाबा पर कृपा

उन दिनों मुरादाबाद के जंगलों मे एक योगाभ्यासी महात्मा वर्षों से योगाभ्यास कर रहे थे। वे स्वाध्याय और ध्यानाभ्यास के साथ-साथ हठयोग की क्रियाओं का भी अभ्यास कर रहे थे। उनकी प्रबल अभिलाषा थी कि-किसी प्रकार उन्हे खेचरी सिद्ध हो जाये। उसके लिये वे लम्बे समय से अभ्यास कर रहे थे किन्तु उन्हे सफलता नही मिल रही थी। एक दिन जब वे खेचरी मुद्रा का अभ्यास कर रहे थे तो उसी समय प्रभु जी वहाँ उपस्थित हो गये और बोले-"महात्मन् ! तुमसे खेचरी नही हो पायेगी, आओ हम तुम्हारी खेचरी करा देते हैं।" यह कहकर उन्होंने महात्मा जी की जीभ को खींचकर उसे लम्बा करके उनके कंठकूप मे लगा दिया। खेचरी सिद्ध हो जाने पर उन महात्माजी को और भी कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। वे हर समय ध्यानस्थ रहने लगे। तपस्वी तो वह पहले ही थे। अब खेचरी के बल पर उन्होंने भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी एवं निद्रा पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली। वे सदा निर्वस्त्र रहते थे। दिसम्बर मास की प्रचण्ड सर्दी मे भी वे कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे और गंगा जी के तट पर एक मचान पर रहा करते थे। भोजन के नाम पर आप चौबीस घंटे मे एक-दो बार थोड़ा सा दूध ग्रहण कर लिया करते थे। आगे चलकर वे महात्मा योगिराज देवराहा बाबा के नाम से देश-विदेश मे सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये। जून १९९० मे २०० वर्ष की आयु मे उन्होंने योगविधि से अपने पार्थिव देह का त्याग कर दिया। इस समय लाखों की संख्या मे उनके शिष्य है जो उनके बताये हुए पवित्र योग मार्ग पर चलकर अपना जीवन सार्थक कर रहे हैं।

बरहन निवास एवं भक्त ठाकुरदास पर कृपा

बाबाजी पर पूर्ण कृपा करके प्रभुजी ने एक-दो दिन मुरादाबाद नगर मे विश्राम किया। फिर वहीं से मथुरा वृन्दावन होते हुए आप आगरा जिले मे स्थित बरहन नामक ग्राम मे पहुँचे और वहाँ भक्त ठाकुर दास को दर्शन दिये। ठाकुर दास आपको बड़े उत्साह से अपने घर ले गया और आपसे कुछ दिन वहीं ठहरने का निवेदन किया। उसके विनीत भाव को देखकर तथा उसके संस्कारों को अपनी योग दृष्टि से जानकर उसका कल्याण करने के उद्देश्य से प्रभुजी ने उसका निवेदन स्वीकार कर लिया। ठाकुर दास के घर पर निवास करते हुए प्रभु जी ने बरहन ग्राम के वासी अनेक रोगियों और विपदाग्रस्त लोगों के कष्टों को अपने आशीर्वाद से दूर किया। आपने भक्त ठाकुरदास को योग के

कुछ सरल साधन सिखाये और कुछ अनुभूत आयुर्वेदिक औषधियाँ बनाने की विधि बताई। आपने उसे आज्ञा दी तुम इसी प्रकार इन औषधियों को बनाते रहो और इनसे रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा किया करो। इससे लोगों का भला तो होगा ही तुम्हारा भी पुण्य बढ़ेगा और हर प्रकार से कल्याण होगा। श्री प्रभु जी की अपार कृपा से उसका घर कुछ ही दिनों मे धन धान्य से परिपूर्ण हो गया। तथा उसकी ध्यानस्थिति भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। कुछ दिन वहाँ निवास करके प्रभु जी ने सवांई ग्राम की ओर प्रस्थान किया। भक्त ठाकुर दास तथा उसके पूरे परिवार ने अत्यन्त भाव-विभोर होकर आपको विदाई दी और उनके घर पुनः पधारने का आप से बार बार निवेदन करते रहे।

सवांई निवास एवं अद्भुत योग लीलायें

सवांई ग्राम आगरा-टूंडला राजमार्ग पर एत्मादपुर से एक किलो मीटर की दूरी पर बरहन की ओर स्थित है। प्रभु जी पदयात्रा करते हुए बरहन से दो-तीन घण्टे मे सवांई पहुँच गये। गाँव के एक किनारे पर सड़क के साथ लगते बाग के बाहर आपको ठाकुर प्यारेलाल मिला। प्यारेलाल एक सन्त सेवी व्यक्ति था और वह महात्माओं का बड़ा आदर किया करता था। वह बड़े सम्मानपूर्वक प्रभुजी को अपने घर पर ले गया और आपको वहाँ ठहरा दिया वह भक्तिभाव से आपकी खूब सेवा करने लगा। प्रभु जी के शुभागमन के पश्चात् वहाँ दिन भर सत्संग चलता रहता था। रात्रि को प्रभु जी एक विशेष प्रकार की औषधि तैयार करके उसकी सैकड़ो पुड़िया बना दिया करते थे। प्रातः काल होते ही सैकड़ो मरीज वहाँ पहुँच जाते थे तो आप हर प्रकार के मरीजों को एक एक पुड़िया दे देते थे। आश्चर्य की बात थी कि सभी प्रकार के रोगी एक ही प्रकार की दवा से और उसकी भी केवल एक पुड़िया से रोग मुक्त हो जाते थे। प्रभु जी के शुभागमन के पश्चात् प्यारेलाल के घर मे सकल सम्पत्तियाँ वास करने लगी। घर धनधान्य से परिपूर्ण हो गया, सब प्रकार के रोग-शोक दूर हो गये। तथा लोगों मे उसका खूब मान सम्मान होने लगा। कुछ दिन पश्चात् प्रभु जी ने प्यारेलाल से कहा-अब हम एकान्त मे रहना चाहते है, इसलिये तुम अपने बाग मे हमारे लिये एक गुफा खुदवाओ और उसके बाहर एक तालाब बनवा दो, हम गुफा मे बैठकर भजन किया करेंगे और तालाब मे स्नान कर लिया करेंगे। प्रभु जी का आदेश पाते ही प्यारेलाल ने गुफा खुदवाने का काम आरम्भ कर दिया तथा गुफा तैयार हो जाने के बाद वहाँ से ४० मीटर की दूरी पर एक तालाब भी बनवा दिया। प्रभु जी ने उस तालाब का नाम अमृत कुण्ड रखा और उस पर शक्तिपात करते हुए कहा-जो भी चर्मरोगी या सूखारोग से ग्रस्त बालक इस अमृत कुण्ड मे स्नान करेगा उसका रोग तत्काल दूर हो जायेगा तथा जो व्यक्ति इस गुफा की रज को श्रद्धा पूर्वक सेवन करेगा उसके सब प्रकार के दुःख दूर हो जायेंगे। एवं उसकी सभी मनोकामनायें पूर्ण होंगी। श्री प्रभु जी के अमोघ आशीर्वाद से हजारों चर्म रोग ग्रस्त व्यक्ति और सूखा रोग ग्रस्त बालक उस अमृतकुण्ड मे स्नान करके नीरोग हो गये तथा सिद्ध गुफा की पावन रज के सेवन से लाखो व्यक्तियो की मनोकामनायें पूर्ण होती रही है। प्यारेलाल ने उस स्थान का नाम ''गुरु का बाग'' रख दिया था। जो बाद में उसी नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कालान्तर में आपके विशेष कृपापात्र एवं सुयोग्य शिष्य योगिराज चन्द्रमोहन जी ने उसका नाम सिद्धगुफा रख दिया, सिद्धगुफा सिद्ध पीठ अब देश विदेश में सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी है। वहाँ की पवित्र गुफा की रज में अब भी वही शक्ति है कि जो भी श्रद्धा पूर्वक उस रज का सेवन करता है, उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है।

श्री प्रभुजी उस गुफा के बाहर धूनी लगाकर वहाँ रहते थे आप स्वयं अपने हाथों अपना भोजन बनाया करते थे। आप स्त्रियों के हाथ का भोजन नही करते थे और उन्हें गुफा के पास आने की आज्ञा भी नही थी। आपके पास दो कुत्ते बैठे रहते थे जो आपके मनोभावों को जानते रहते थे। यदि कोई स्त्री उस बाग में प्रवेश करती तो वे कुत्ते तत्काल उसे काटने को दौड़ पड़ते थे। प्रभु जी के पास दिन भर सत्संगियों की भीड़ लगी रहती थी। किन्तु प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में आपको वहाँ किसी का आना पसन्द नहीं था। उस समय आप ईश्वर चिन्तन में लीन रहा करते थे, एक दिन प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त की पावन बेला में कुछ सत्संगियों ने बाग में प्रवेश किया तो वे यह देखकर आश्चर्य चकित हो गये कि श्री प्रभु जी भगवान शंकर के रूप में अपने चबूतरे पर विराजमान हैं। आपकी जटायें कमर के नीचे तक फैली हुई है, कमर में व्याघ्राम्बर लिपटा हुआ है, सैकड़ों सर्प आपके शरीर में लिपटे हुए है तथा कुछ सर्प आसपास घूम रहे है। इस दृश्य को देखकर वे लोग अत्यन्त भयभीत हो गये और निराश होकर पीछे लौटने लगे तो प्रभु जी ने आवाज देकर उन्हें बुला लिया और कहा- डरो मत, ये सर्प भी तुम्हारे अपने ही भाई है। किन्तु भविष्य में सूर्योदय से पूर्व तुम लोग यहाँ मत आया करना।

प्रभु जी ने सवांई मे काफी समय तक निवास किया और अपने उस निवास काल में हजारों व्यक्तियों का कल्याण किया। सवांई ग्राम के वासियों पर तो आपकी विलक्षण कृपायें बरसती ही रही, वहाँ आपने जो अद्‌भुत योग लीलायें की उनमे निम्नलिखित घटनायें विशेष रूप से उल्लेखनीय है-

(१) ठाकुर प्यारेलाल और ठाकुर कर्णसिंह के आग्रह पर उन्हें अपने विराट स्वरूप (विश्वरूप) का दर्शन कराना।

(२) भक्त समुदाय को कुएँ के अन्दर गंगा जी के दर्शन कराना।

(३) ठाकुर चन्दनसिंह को अद्‌भुत माला देकर उसे प्रत्येक कार्य में सफल बनाना और उसकी हर प्रकार की मनोकामना को पूर्ण कराना।

(४) ठाकुर जौहरीसिंह को कृपापूर्वक एक चवन्नी देकर उसे धन-धान्य से सम्पन्न बना देना।

(५) अपने निर्धन भक्त बाबूराम की कन्या के विवाह के अवसर पर उसके घर की एक कोठरी में अपनी चरण पादुकायें रखवाकर वहाँ रिद्धि सिद्धि का वास करा देना और भण्डार गृह से हर प्रकार की वान्छित वस्तु का प्राप्त हो जाना।

(६) ठाकुर दास को वृद्धावस्था में चार पुत्रों का वरदान देना।

(७) एक ही समय मे चार अलग-अलग स्थानों में प्रकट होकर अपने भक्तों की मनोकामना पूर्ण करना।

(८) अपनी गुफा के अन्दर बन्द होकर अणिमा सिद्धि से बाहर निकलना और आकाश गमन सिद्धि के आकाश मार्ग से प्रस्थान कर जाना।

आकाश मार्ग से प्रस्थान, नर्मदा परिक्रमा एवं ब्राह्मण बालक हरीराम पर कृपा

गुरू का बाग सवांई में भक्तों की भीड़ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। जिससे श्री प्रभु जी को एकान्त सेवन का अवसर नही मिलता था। अतः आप शीघ्रातिशीघ्र नेपाल (हिमालय) स्थित सिद्धाश्रम मे अपने गुरूदेव के चरणारविन्दों में पहुँचना चाहते थे। किन्तु भक्त लोग आपको कही जाने ही नही देते थे। जब भी जाने की बात आती सत्संगी लोग हठपूर्वक आपको रोक देते थे। अन्त में एक दिन प्रभु जी ने उन लोगों से कहा-"अब हम यही गुफा के अन्दर बैठकर एकान्त में भजन करेंगे। तुम लोग गुफा के अन्दर किसी को मत आने देना। बाहर से ताला लगा दो।" यह सुनकर उन लोगों को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्हे यह पूरा विश्वास हो गया कि अब बाबा जी हमें छोड़कर कही नही जायेंगे। दोपहर के समय प्रभु जी गुफा के अन्दर चले गये और बाहर से ताला लगा दिया गया। भक्त लोग आते जाते रहे और शाम तक सत्संग चलता रहा। रात्रि को दो व्यक्ति गुफा के आगे लेटे रहे तथा शेष लोग अपने-अपने घरों को चले गये।

प्रातः ४ बजे के लगभग प्रभुजी ने एक अद्‌भुत योगलीला की। आप अणिमा सिद्धि द्वारा गुफा से बाहर निकल आये और आकाश मार्ग से वहाँ से चले गये। कुछ ही दूरी पर सुखा नामक एक प्रभु भक्त किसान अपने खेत मे हल चला रहा था। उसने एक अत्यन्त तेजोमय प्रकाश धारा के बीच किसी को आकाश में उड़ते देखा तो वह बड़ा भयभीत हो गया। उसने सोचा कि-यह कोई भूत-प्रेत है। उसे इस प्रकार भयभीत देखकर प्रभुजी नीचे उतर आये और बोले-'अरे सुखा! डरो मत, हम तुम्हारे गुफा वाले बाबा है, अब हम नेपाल हिमालय को जा रहे है। १२ वर्ष बाद फिर यहाँ आयेंगे और तुम लोगो से मिलेंगे। तुम हमारे जाने की बात किसी से बताना मत। ऐसा कहकर आप पुनः आकाश में पहुँच गये और दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान कर गये। आप नर्मदा तट पर पहुँचे। कुछ दिन वहाँ निवास किया और फिर नर्मदा की परिक्रमा करके पश्चिम दिशा की यात्रा आरम्भ की। इस बीच बहुत से संन्यासी और गृहस्थी साधक आपके भक्त बनकर नर्मदा परिक्रमा मे तथा पश्चिम की इस यात्रा मे आपके साथ सम्मिलित हो गये थे। जिनमें कृष्णानन्द और सुखराम प्रमुख थे। आगे चलकर हरीराम नामक एक ब्राह्मण बालक के साथ आपकी भेंट हुई उसकी भक्ति भावना, दानशीलता, शूरवीरता तथा न्यायप्रियता आदि गुणों से प्रसन्न होकर आपने अपने योगबल से उसे अजर अमर सिद्ध बना दिया और उसका नाम, हरीहरानन्द रख दिया उसे भी आपने यात्रा मे अपने साथ रख लिया। इस यात्रा में आपने अपने योगबल से कई प्रेतग्रस्त स्थानों की शुद्धि की, कई दम्भी महात्माओं और भैरव सिद्ध अहंकारी साधुओं का मान मर्दन करके उन्हें सन्मार्ग मे लगाया तथा हजारो जिज्ञासुओं को पवित्र योग मार्ग में दीक्षित किया।

क्रमशः

***

समाधि योग

- डॉ० स्वामी केशवाचार्य

उपनिषदों के द्रष्टा ऋषियों ने ध्यानबल से अपने अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा इस बात को अवगत किया कि बाहरी समस्त चराचर जगत के एक मात्र कारण अनन्त चेतन ब्रह्म के दो रूप है-एक व्यक्त रूप और दूसरी वह आभ्यन्तर चेतना जो बाह्य, व्यक्त जगत् को अनुप्राणित करती है। सत्तास्फूर्ति देती है। पहला रूप इन्द्रियगोचर है और बाह्य प्रपंच कहलाता है। और दूसरा अतीन्द्रिय है, और प्रत्यक् चैतन्य कहलाता है। बाह्य प्रपंच परिणामी है, और प्रत्यक् चैतन्य अपरिणामी है।

'ये सब दृश्य पदार्थ विनाशी हैं, अन्तरात्मा अविनाशी कहलाता है।

विशेष निरंजन परब्रह्म अक्षर है। (योगशिखोपनिषद् ३/१६)

जहाँ बाह्य प्रपंच है वहाँ प्रत्यक् चैतन्य भी है। दूध में मक्खन की भाँति प्रत्यक् चैतन्य बाह्य प्रपंच में सर्वत्र सर्वदा व्याप्त है, किन्तु प्रत्यक् चैतन्य के सर्वांश में सर्वदा बाह्य प्रपंच नही है। दूध के अणु-अणु में मक्खन है, किन्तु जब तक दूध मथा नही जाएगा। तब तक उसमें मक्खन दृष्टिगोचर नही होगा। इसी प्रकार समाधि का आश्रय लिए बिना प्रत्यक् चैतन्य का साक्षात्कार नही होता। जाग्रत अवस्था में क्षिप्त मन इन्द्रियों के द्वारा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के रूप में बाह्य प्रपंच का प्रत्यक्ष होता है। उस समय प्रत्यक् चैतन्य अन्तर्हित रहता है। किन्तु प्रत्यक् चैतन्य का साक्षात्कार इन्द्रियों के निरोध से अर्थात् निरुद्ध मन के द्वारा समाधि अवस्था में सच्चिदानन्द रूप में होता है। उस समय इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। साथ ही बाह्य प्रपंच तिरोहित हो जाता है।

जब मनुष्य परमात्मा को परमार्थतः देख लेता है तब अखिल दृश्य जगत विलीन हो जाता है।

(जबाल दर्शनोपनिषद)

इस प्रकार एक समय में ब्रह्म के एक रूप का ही साक्षात्कार होता है। आत्मदर्शी मुनि ब्रह्म के अविनाशी प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप का ही वरण करते हैं। और परिणामी दृश्य स्वरूप का अपलाप करते हैं। हमें दृश्य प्रपंच की प्रतीती इन्द्रियों के द्वारा होती है। किन्तु ये इन्द्रियाँ अर्थात् चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा मन के सहयोग बिना व्यापार नही करती। उदाहरणतः यदि हमारा मन किसी दूसरे विचार में संलग्न हो तो हमारे नेत्र खुले रहने पर भी तथा किसी खास वस्तु पर हमारी दृष्टि जमी रहने पर भी हमें उस वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं होता। यही हाल दूसरी इन्द्रियाँ-श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा का है। इन्द्रियों के द्वारा विषयों का अनुसन्धान करने के अतिरिक्त मन प्राक्तन संस्कारों की ही आवृत्ति करता हुआ अथवा आगे मिलने वाले पदार्थों की चिन्ता करता हुआ क्षिप्त अवस्था में रह सकता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध कर देने से, अर्थात् मन को सब प्रकार के संकल्पों से सर्वथा शून्य कर देने से-इसी को चित्त की निरुद्ध अथवा समाहित अवस्था कहते हैं- सारी इन्द्रियाँ

निर्व्यापार हो जाती है, जिससे बाह्य प्रपंच का दीखना बन्द हो जाता है। परिणामी बाह्य प्रपंच के अदृश्य हो जाने पर उससे इतर अविनाशी प्रत्यक् चैतन्य की उपलब्धि होती है। अर्थात् बाह्य आवरण के दृष्टि के सामने से हट जाने पर भीतर की सार वस्तु प्रकट हो जाती है।

चित्त के (बाह्य विषयों का अनुसन्धान करते समय) चंचल होने पर संसार का भान होता है। मन का निश्चल होना ही मुक्ति है। अत: हे विश्व के नियन्ता ! परम परम तत्व के ज्ञान से ही मन को स्थिर करना चाहिये। (यह योगशिखोपनिषद् में महेश्वर के द्वारा ब्रह्मा के प्रति उपदेश किया गया है। ६/५८)

'चंचलता से शून्य मन अमर कहलाता है, वही तप है, और उसी को मोक्ष कहते हैं। यह शास्त्रों का सिद्धान्त है। सब प्रकार के संकल्पों से सर्वथा शून्य हो जाने का नाम ही **''समाधि''** है। जिस समाधि में मन सर्वथा निश्चल हो जाता है। और जीवात्मा और परमात्मा का भेद मिट जाता है। जीवात्मा का प्रत्यक् चैतन्य में, सर्वव्यापी अन्तरात्मा में, ब्रह्म के अतीन्द्रिय रूप में स्थित होना ही समाधि है। जीवात्मा के अन्दर यह प्रत्यक् चैतन्य अर्थात् परमात्मा जिसे निर्विकल्प **'परम अहम्'** भी कहते हैं, क्षुद्र अहंप्रत्यय से आच्छन्न रहता है, जो देहाभिमान का कारण है। इस क्षुद्र अहं बुद्धि के निवृत्ति हो जाने पर अथवा चूर्ण हो जाने पर प्रत्यक् चैतन्य अथवा निर्विकल्प **'परम अहम्'** का उदय होता है। अत: समाधिलाभ के लिए क्षुद्र अहं बुद्धि की निवृत्ति परमावश्यक है। दूसरे शब्दों में क्षुद्र अहं बुद्धि की निवृत्ति ही समाधि है। जिस समाधि में हृदय की गांठ खुल जाती है और चित्त का विस्तार होकर उसे पूर्णता की अवस्था प्राप्त हो जाती है। जीवात्मा और परमात्मा की एकता के ज्ञान के उदय को ही **''समाधि''** कहते हैं। (जाबाल दर्शनोपनिषद् १०/१ और अन्नपूर्णोपनिषद् ५/७५)

'जीवात्मा की परमात्मा के साथ एकता ही जिसमें संकल्प की सारी क्रिया हो नष्ट हो जाती है, **''समाधि''** कहते हैं।' (सौभाग्यलक्ष्म्यु पनिषद् १६)

'मुनियों के द्वारा साधित समाधि उस संकल्प शून्य अवस्था का नाम है जिसमें न तो मन की क्रिया है और न बुद्धि का व्यापार है, जो आत्मज्ञान की अवस्था है और जिसमें उस (प्रत्यक् चैतन्य) के अतिरिक्त सबका बाध है'। (मुक्तिकोपनिषद् २/५५)

'ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा अथवा सर्व संकल्प निवृत्ति के द्वारा चित्त की वृत्तियों को सर्वथा भूल जाने का नाम ही समाधि है।' (तेजोबिन्दूपनिषद् १/३६)

'हे ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, **''समाधि''** शब्द उस संशय रहित मानसिक पूर्णता का वाचक है जिसमें आसक्ति का सर्वथा अभाव है और जिसमें सद्विवेक भी नहीं है। (अन्नपूर्णोपनिषद् १/५०)

जीवात्मा परमात्मरूप महासागर के वक्ष:स्थल पर नृत्य करती हुई एक तरंग के समान है। तरंग के पीछे समुद्र रूप महान आधार है। इसी प्रकार जीवात्मा के पीछे परमात्मा रूप महान आधार है। वासना अथवा उससे उत्पन्न होने वाली अहं बुद्धि ही तरंग की सत्ता को अक्षुण्य रखती है। जिस

क्षण वासना नष्ट हो जाती है और उसके साथ ही अहं प्रत्यय भी निवृत्त हो जाता है। उसी क्षण तरंग विलीन होकर सागर में मिल जाती है। अर्थात् जीवात्मा परमात्मा में प्रवेश कर उसके साथ एकीभाव को प्राप्त हो जाता है।

समाधिसिद्धि तथा मोक्ष के लिए आवश्यकता है मन को निरुद्ध करने की। वासना शून्य करने की अर्थात् सर्वथा संकल्पशून्य होने की। इस संकल्प शून्यता को ही जीवात्मा की प्रत्यक् चैतन्य में सर्वव्यापक अन्तरात्मा में ब्रह्म के अतीन्द्रिय भाव में स्थिति कहते हैं। प्रत्येक वस्तु को ब्रह्म से अभिन्न देखना ही ज्ञान है। मन को निर्विषय करना परमात्मा का ध्यान है। मनोमल के नाश को ही स्नान कहते हैं। और इन्द्रियनिग्रह का नाम ही शौच है।

(स्कन्दोपनिषद् ११ और मैत्रेयूपनिषद् २/२)

'जब निश्चल मन के द्वारा क्षिप्त मन की चिकित्सा करने से मन की वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। तभी सुदुर्लभ परब्रह्म का साक्षात्कार होता है।' (योगशिखोपनिषद् ६/६२)

'जिस क्षण हृदय में भरी हुई कामनाऐं नष्ट हो जाती हैं उसी क्षण यह मरणधर्मा मनुष्य अमृतत्व लाभ कर लेता है। साथ ही इसी जीवन में ब्रह्मानन्द का आस्वादन करता है।'

(बृहदारण्य कोपनिषद् ४/४/६)

'जब इस क्षिप्त मन को संकल्पाभाव के शस्त्र से शान्त कर दिया जाता है तभी समग्र सर्वगत निर्विशेष ब्रह्म का साक्षात्कार होता है'। (महोपनिषद् ४/९१)

'जिस भाग्यवान पुरुष की आत्मा में रति हो गयी है, जिसका मन पूर्ण और शुद्ध है और जिसे अनुत्तम विश्राम प्राप्त हो गया है उसके लिए इस संसार में कोई भी कामना वस्तु नहीं रह जाती'। (महोपनिषद् २/४६)

'जो चित्त आत्मा में निवेशित हो गया है और जिसके सारे मल समाधि के द्वारा धुल गये हैं, उसके आनन्द का वाणी के द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, केवल अन्तःकरण द्वारा अनुभव किया जा सकता है। (मैत्युपनिषद् ६/३४)

जीवात्मा और परमात्मा की एकता की अवस्था जिसमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी का अभाव है, जो परमानन्द रूपा है और शुद्ध चैतन्यात्मिका है, वही समाधि है।

(शाण्डिलोपनिषद् १/११)

'उपनिषदों तथा पातंजल योग सूत्र में समाधि की अवस्था प्राप्त करने अर्थात् मन को निरुद्ध अथवा सब प्रकार के संकल्पों से सर्वथा शून्य करने की अनेक विधियाँ बतायी गयी हैं। परन्तु शुद्ध रूप से चित्त वृत्ति का अहंकार शून्य होकर ब्रह्माकार बन जाना ही सम्प्रज्ञात समाधि का स्वरूप है। यह स्थिति ध्यान के परिपक्व अभ्यास से सिद्ध होती है।

(मुक्तिकोपनिषद् २/५१)

'चित्त की प्रशान्त वृति जो ब्रह्मानन्द को देने वाली है, असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। यही अवस्था योगियों को अतिशय प्रिय है। (मुक्तिकोपनिषद् २/५२)

'इस गुणसमाहार (बाह्यप्रपंच) को आत्मा से भिन्न देखने वाले तत्व दर्शी पुरुष की आन्तरिक शान्ति से उत्पन्न स्थिति का नाम समाधि है। (अन्नपूर्णोपनिषद् १/२९)

पातंजलि योगसूत्र की समीक्षा करने से हम इसी सिद्धान्त पर पहुँचते हैं। वहाँ भी इस बात की ओर संकेत किया गया है कि चित्त की चंचलता अथवा क्षुद्र अहं बुद्धि ही जीवात्मा को परमात्मा से अलग रखती है। परन्तु ज्यों ही यह अहंकार अथवा भेद बुद्धि निवृत्त हो जाती है त्यों ही जीवात्मा अपने असली तेजोमय रूप को प्राप्त होकर परमात्मा के साथ एक हो जाता है। जब चित्त अपनी चित्तता को भूलकर ध्येयाकार बन जाता है, उस अवस्था को 'समाधि' कहते हैं। पातंजल योग सूत्र में भी अहंकार के नाश का सर्वोत्तम उपाय अपरिच्छिन्न निर्विकल्प ब्रह्म के प्रति आत्मसमर्पण बुद्धि पूर्वक कायिक, वाचिक, मानसिक सब प्रकार की क्रिया के त्याग का अभ्यास कहा गया है। दृश्य प्रपंच की आड़ में छिपे हुए निर्विकल्प ब्रह्म का साक्षात्कार करने में जब इन्द्रियाँ अपने को असमर्थ अनुभव करती है। तब इस प्रकार की निष्क्रियता एवं समर्पण का अभ्यास होता है। इस अभ्यास से इस क्रिया के अनुकूल आसन अपने आप लग जाता है और साधक धीरे-धीरे शीतोष्ण सुख-दुःख, सत्-असत् आदि द्वन्द्वों के अभिघात से मुक्त हो जाता है। साथ ही प्राणों की क्रिया भी अपने आप बन्द हो जाती है। और प्राणायाम सध जाता है। जिससे आत्म साक्षात्कार का अवरोधक अहंकार का परदा हट जाता है।

१. **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''।**
चित्तवृति का निरोध ही योग है। (पातंजल योगसूत्र समाधिपाद २)

२. **'तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'।**
तब द्रष्टा अपने असली स्वरूप में स्थित होता है। (पातंजल यो० समाधि ३)

३. **'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'।**
चित्त को किसी देश-विदेश में बाँध देना धारणा है। (पातंजल योग विभूति पाद १)

४. **'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''।**
इस प्रकार की एकाग्रता के द्वारा वृत्ति के अखण्ड प्रवाह का नाम ध्यान है।
(पा. यो. विभूति २)

५. **'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः'।**
ध्यान के स्थिर हो जाने पर मन ध्येयाकार बन जाता है और अपने स्वरूप को भूल जाता है। इस अवस्था को समाधि कहते है। (पा. यो. विभूति ३)

६. 'समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्'।

ईश्वर के समक्ष सर्वतोभावेन आत्म समर्पण कर देने से समाधि सिद्ध होती है।

(पातंजल योग सूत्र साधन ४५)

७. 'प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम्'।

सब प्रकार के प्रयत्नों को शिथिल कर देने से तथा अनन्त परमात्मा को आत्म समर्पण करने से (ध्यानोपयोगी सरल आसन लग जाता है। (पा. यो. साधन ४७)

८. 'ततोद्वन्द्वानभिघातः'।

इसके अनन्तर द्वन्द्वों में समभाव हो जाता है। (पा. यो. साधन ४८)

९. 'तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्रणायामः'।

ऐसा होने पर श्वास-प्रश्वास की गति रुक कर प्राणायाम लग जाता है।

(पा.यो. साधन ४९)

१०. 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'।

तब (आत्मा के) प्रकाश का अवरोधक आवरण क्षीण हो जाता है। (पा.यो. साधन ५२)

११. 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्'।

उस अनन्त (परमात्मा) में निरतिशय सर्वज्ञता का बीज रहता है। (पा. यो. समाधि २५)

१२. 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'।

उसके (सर्वव्यापी अन्तरात्मा को आत्म समर्पण करने के) बाद सारे विघ्न हट जाते हैं और प्रत्यक्चेतन की उपलब्धि हो जाती है। (पा.यो. समाधि २९)

उपरोक्त समस्त साधनों में विशेष रूप से मार्ग दर्शन के लिए (सद्गुरु) महापुरुष की पूर्ण आँवश्यकता होती है। सद्गुरु बिना कोई साधन सुलभ नहीं हो सकता है। सद्गुरु ही उस अनन्ताकाश का मालिक परमपिता परमात्मा तक पहुँचा सकते हैं। कोई भी साधन योग तभी सम्भव है जब महाप्रभु जी की कृपा और श्री सद्गुरुदेव प्रातः स्मरणीय श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की कृपा व आशीर्वाद प्राप्त हो।

'बिनु गुरु भवनिधि तरई न कोई
जो विरञ्चि शंकर सम होई'।

श्री सद्गुरुदेव कृपा बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। सद्गुरु के चरणों में सारे कठिन योग सरल हो जाते हैं।

***

जीवन तत्व साधन

(पिछले अंक से आगे)

हृदय के दो भाग है- एक दाहिना और एक बायाँ। जो रक्त फेफड़ों से शुद्ध होकर आता है, वह हृदय के बाये भाग मे जमा होता है और जो अशुद्ध रक्त सारे शरीर से बहकर आता है वह दाहिने भाग मे जमा होता है। इन प्रत्येक दाहिने-बाये भागों मे दो-दो कोष्ठ है। इस प्रकार हृदय मे कुल चार कोष्ठ है। एक-एक ऊपर और एक-एक नीचे। ऊपर वाले को (Left auricle) बायाँ ग्राहक कोष्ठ और (Right auricle) दाहिना ग्राहक कोष्ठ कहते है और नीचे वाले को (left ventricle) बायाँ क्षेपक कोष्ठ और (Right ventricle) दाहिना क्षेपक कोष्ठ कहते है। इन दोनों भागो के बीच मे एक छेद होता है। उसमें परदे लगे रहते है। और इन पर्दों मे छोटे-छोटे बन्धन लगे रहते है। जिनके संयोग से परदे खुलते और बन्द होते है। हृदय के चारो-कोष्ठो से रक्त नालियों का सम्बन्ध रहता है। दाहिने ग्राहक कोष्ठ से शरीर के ऊपर व नीचे की दो बड़ी शिरायें मिलती और दाहिने क्षेपक कोष्ठ से एक बड़ी धमनी निकलती जिसके दो भाग होकर दोनों फेफड़ों मे जा मिलते है।

फेफड़े से भी शिरायें निकलती हैं जो बाये ग्राहक कोष्ठ मे जाती है। इसी प्रकार बायें क्षेपक कोष्ठ से एक बड़ी धमनी निकलती है जिसकी शाखायें सारे शरीर मे फैली हुई है। प्रत्येक धमनी के मुँह पर अर्द्धचन्द्राकार परदे रहते है जो धमनी की ओर खुलते है और क्षेपक कोष्ठ की ओर बन्द होते है। हम यह बता चुके है कि हृदय के दो भागो मे से दाहिने मे अशुद्ध रक्त और बाये मे शुद्ध रक्त रहता है। शुद्ध लाल रक्त सारे शरीर मे जाकर शरीर का विकार अपने साथ लेकर कुछ काला हो जाता है फिर हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ मे जाता है और वहाँ से उतर कर दाहिने क्षेपक कोष्ठ मे पहुँचता है। इन दोनों कोष्ठो के बीच का परदा ज्यों ही बन्द हुआ त्यों ही हृदय आकुंचित होता है और रक्त जोर से फेफड़ों मे प्रविष्ट होता है। इधर फेफड़ों में आई हुई प्राण वायु उस काले रंग के विकार को रक्त से चूस कर प्रश्वास द्वारा बाहर फेंक देती है और रक्त शुद्ध (लाल) हो जाता है। इस प्रकार फेफड़ो मे रक्त शुद्ध हो जाने के बाद वह हृदय के बाये ग्राहक कोष्ठ में आता है। फिर हृदय संकुचित होता है और रक्त जोर से धमनियो मे प्रविष्ट होकर सारे शरीर मे दौड़ता है। यह क्रिया प्रति क्षण हुआ करती है। और जब दाहिने व बाये क्षेपक कोष्ठ संकुचित होते है तब लुप-डुप की आवाज होती है। अनुमानतः २४ घण्टे मे २५२ मन रक्त हृदय से फेफड़े मे शुद्ध होने के लिये आता है। यह न भूलना चाहिए कि ये शिरायें व धमनियाँ जहाँ-जहाँ एक दूसरे से मिलती हैं वहाँ-वहाँ एक प्रकार के परदे (Gate keeper) लगे है। जो शरीर मे शुद्ध व अशुद्ध रक्त का मिश्रण नही होने देते है।

अब यह जानने की जरूरत है कि ये सात करोड़ बीस लाख वायु कोष क्या है ? ये धोबिया के

कुण्ड या टब हैं। जैसे धोबी अपने कुण्डियों में पानी डालकर वस्त्र धोते हैं उसी तरह रक्त इन वायु कोषों में भर कर श्वास द्वारा ली हुई प्राण वायु से शुद्ध होता है ऐसा अद्भुत धोबीखाना संसार में और कहीं नहीं मिलेगा। ऑक्सीजन एक प्रकार की भाप है। आप खुली हवा में जोर से श्वास लीजिए तो नाक के भीतर की त्वचा में एक प्रकार की मीठी जलन मालूम होगी इसी ऑक्सीजन की तेजी से फेफड़े के उन वायु कोषों के अन्दर भरे हुए रक्त का मैल जल जाता है। महर्षि मनु अपनी स्मृति में प्राणायम का लाभ बताते हैं कि-

दह्यन्ते ध्मायमानानां, धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते, दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थ-

जैसे अग्नि में धौंके हुए धातुओं के मल दग्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार प्राण के रोकने से इन्द्रियों के दोष दग्ध हो जाते हैं।

अब विचारणीय बात यह है कि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जावे परन्तु श्वास के साथ वायु फेफड़े में न पहुँचे अथवा सब वायु कोषों में जहाँ रक्त पहुँचा है शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है, वह पूर्ण श्वास नहीं होता, इसलिए फेफड़े के सब भाग नहीं खुलते अर्थात् केवल दो करोड़ वायु कोषों में वायु पहुँचती है और शेष ५ करोड़ कोषों में वायु नहीं पहुँचती। परिणाम यह होता है कि फेफड़े के वे भाग रोगी होने लगते हैं और खाँसी, दमा, क्षय, निमोनिया आदि अनेक रोग जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं होने लगते हैं। दूसरी ओर एक भयंकर परिणाम यह भी होता है कि हृदय से जो रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में आता है वहाँ बिना शुद्ध हुए अशुद्ध रक्त ही हृदय में वापस चला जाता है। हृदय भी उसे रोक नहीं सकता वहाँ से वह धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में पहुँचता है। इसका फल रक्त विकार होता है। रक्त के विकृत होने से मामूली रोग खाज से लेकर भयंकर कुष्ठ रोग तक हो जाता है।

इसलिए इन दुष्परिणामों से बचने के लिए भी आवश्यक है कि फेफड़े वायु से पूरित होते रहें और कोई कोष ऐसा न रहे जहाँ वायु न पहुँच सके। यहीं से दीर्घ श्वास की व प्राणायाम की आवश्यकता आरम्भ होती है।

सर्वांगतान करते समय जब हम श्वास भरते हैं और शरीर को तानते हुए हाथ पीछे ले जाते हैं तो फेफड़े के सारे वायु कोषों में शुद्ध वायु पहुँच जाती है और हृदय में आया हुआ सम्पूर्ण रक्त शुद्ध होकर वापस चला जाता है और इस तरह न तो हमारे फेफड़ों में कोई रोग होता है और न दूषित रक्त के कारण शरीर के किसी अन्य भाग में कोई रोग होता है। रक्त में आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाने से बल, स्फूर्ति व नवजीवन का संचार होता है और यदि कोई रोग छिपे बैठे होते हैं तो वे भाग जाते हैं।

सर्वोत्तान मे दूसरी क्रिया तानने व शिथिलीकरण की होती है। इससे रक्त नलिकाओं मे जमी हुई मैल बाहर निकल जाती है। जैसे किसी रबड़ की नली को साफ करने के लिए उसे दबाकर खीचते है और ढीला करते है, उसी तरह शरीर को तानने व ढीला करने से नलिकाओं में जमी हुई मैल छूट कर रक्त के साथ बाहर निकल जाती है और शरीर के अंग जो मैल को बाहर निकालते है उन्हीं के द्वारा वह मैल भी बाहर चली जाती है और शरीर शुद्ध होकर रोग रहित व कान्तिमय बन जाता है।

यह है सर्वोत्तान करने का अनुपम लाभ! अब हम जीवन तत्व साधन की दूसरी क्रिया का वर्णन करेंगे।

स्कन्ध चालन

यह जीवन तत्व साधन की दूसरी क्रिया है। इसको करने के लिए मनुष्य को सुखासन से बैठ जाना चाहिए और सिर को सीधा रखते हुये दोनों कन्धों को साइकिल के पैडल की तरह चलाना चाहिए। उसका ठीक प्रकार यह है– अपने दाहिने कन्धे को नीचे की ओर झुका दीजिए, जितना भी दबाया जा सके। ऐसा करने पर बायाँ कन्धा स्वाभाविक ही ऊपर उठ जायेगा। फिर दाहिने कन्धे को झुके हुए आगे ले जाकर ऊपर ले जाओ। ऊपर की ओर ले जाकर उसको पीछे को ले जाओ। ज्यों-ज्यों दाहिने कन्धे को नीचे की ओर ले जाओगे, त्यों-त्यों बायाँ कन्धा ऊपर की ओर हो जायेगा और ज्यों-ज्यों दायाँ कन्धा आगे की ओर झुकाओगे त्यों-त्यों बायाँ कन्धा पीछे की ओर जायेगा और ज्यों ही दायाँ कन्धा ऊपर की ओर जायेगा त्यों ही बायाँ नीचे की ओर हो जायेगा और दायाँ कन्धा ऊपर की ओर होकर के पीछे की ओर हो जायेगा। इस क्रिया को करने पर दोनों कन्धे साइकिल के पैडल की तरह गोलाकार रूप मे घूमते रहेंगे। सिर सीधा रखकर सामने की ओर देखते रहना चाहिए। यह क्रिया पन्द्रह मिनट तक करनी चाहिए।

इस क्रिया को विपरीत गति से भी किया जा सकता है। यदि हम पीछे की ओर से आगे की ओर चलाना चाहते है तो अपने दाहिने कन्धे को कान के ऊपर उठाना चाहिये और बायाँ कन्धा नीचे को घुमाते हुए नीचे की ओर ले जाना चाहिए। दाहिने कन्धे को नीचे की ओर झुकाने से बायाँ कन्धा स्वयं ही पीछे की ओर घूमता हुआ ऊपर की ओर चला जायेगा। इसी प्रकार दोनों कन्धे बेलनाकार घूमते रहेंगे। इस क्रिया को करने से फेफड़े सक्रिय हो जाते है और उसे सुषुप्त वायु कोष खुल जाते है और अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगते है। कन्धों, हंसली एवं गर्दन के सभी विकार दूर हो जाते है। इस क्रिया का प्रभाव यकृत व प्लीहा पर भी पड़ता है। यकृत को जिगर व अंग्रेजी मे लिवर (Liver) कहते है। जिगर की खराबी वर्तमान युग की सभ्यता का सबसे बड़ा प्रसाद है। हमारे कुपथ्यों, दुष्कर्मों व अनियमित जीवन जीने से तथा व्यायामादि न करने से यकृत बिगड़ जाता है और बढ़ जाता है। अंग्रेजी मे कहावत है कि Life, love and liver are inseperably tied

together अर्थात् जीवन, प्रेम और जिगर इस प्रकार परस्पर बंधे हुए हैं कि ये अलग नहीं किये जा सकते। जिसका जिगर खराब, उसकी जिन्दगी बरबाद, जिसकी जिन्दगी बरबाद, उसके लिए प्रेम वैसे ही है जैसे भैंस के लिए बीन व बन्दर के लिए अदरख।

यकृत में एक ऐसा रस रहता है जो हर प्रकार के विष को बेकार कर देता है। यकृत से एक पाचक रस निकलता है जो भोजन को पचाने में सहायता करता है। जब यह रस भोजन में नहीं मिलता तो पेट में अफारा और भारी हो जाता है और पीड़ा होने लगती है। खून नहीं बनता और पीलिया रोग हो जाता है। यकृत आकार में बढ़ जाता है। छाती की जलन, मुँह का कडुवापन खट्टी डकार कड़वी कै व हरे-पीले दस्त आदि रोग जिगर की खराबी से होते हैं। स्कन्ध चालन क्रिया करने से यकृत में खराबी नहीं आती है और यदि कोई दोष आ भी गया है तो वह दूर हो जाता है और जिगर अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगता है।

स्कन्ध क्रिया का विशेष प्रभाव Thyroid व Para Thyroid glands पर पड़ता है। यह glands क्या है और हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में इनका क्या महत्व है ? इस पर हम विस्तार से विचार करेंगे।

थायरोइड ग्रंथि (Thyroid glands): यह ग्रन्थि मनुष्य की ग्रीवा के कुछ नीचे श्वांस नली के दोनों ओर स्थित होती है। इसके दो पिण्डक होते हैं जो ऊपर की ओर फैले रहते हैं, नीचे की ओर जुड़े रहते हैं। ग्रन्थि का प्रत्येक पिण्ड लगभग पाँच सेन्टीमीटर लम्बा व तीन सेन्टीमीटर चौड़ा रहता है। इसका ऊपरी भाग नुकीला और नीचे का भाग चौड़ा होता है। इस ग्रन्थि का रंग भूरा होता है। ग्रन्थि में पीले रंग का हारमोन बनता है, जिसे थाइरोक्सिन (Thyroxian) कहते हैं। थाइरोक्सिन का प्रमुख भाग आयोडीन होता है। भोजन में आयोडीन की कमी से यह ग्रन्थि फूलने लगती है और मनुष्य को घेंघा रोग हो जाता है।

इन ग्रन्थियों में रक्त के श्वेत कीटाणुओं की प्रमुख छावनी रहती है अर्थात् यह उनका सबसे बड़ा सुदृढ़ किला है। यह ग्रन्थि जब तक सशक्त रहती है और अपना कार्य ठीक प्रकार करती रहती है तब तक मनुष्य के ऊपर रोगों का आक्रमण नहीं होता और वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती। जब यह ग्रन्थि ठीक कार्य नहीं करती तब शरीर में रोग के कीटाणु अपना प्रभाव जमाने लगते हैं और मनुष्य स्वस्थ नहीं रह पाता।

पैरा-थाइरोइड ग्रंथि (Para Thyroid glands): इस ग्रन्थि की संख्या चार होती है। दो ग्रीवा में थाइरोयड ग्रन्थि के ठीक पीछे स्थित रहती है। इन ग्रन्थियों का आकार छोटा लगभग ६ सेन्टीमीटर और रंग भूरा लाल होता है। दो ग्रन्थियाँ ऊपर व दो ग्रन्थियाँ नीचे स्थित रहती है। पैरा थाइरोयड ग्रन्थि से पैराथिन (Parathrin) नामक हारमोन निकलता है। इस हारमोन का कार्य रक्त में कैल्शियम और फास्फोरस की मात्रा पर नियन्त्रण रखना है। इस हारमोन की कमी से बच्चों की हड्डियाँ कमजोर व लचीली हो जाती है। जब इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता कम हो जाती है तब

मनुष्य के हाथ पैरों में ऐंठन होने लगती है।

थाइरोयड ग्रन्थि के कार्य के महत्व को समझने के लिए हम एक काल्पनिक उदाहरण का आश्रय लेंगे। हमारे शरीर के रक्त में दो प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं। एक लाल रक्त कीटाणु तथा एक श्वेत रक्त कीटाणु। इनका आकार इतना छोटा होता है कि साधारण आँखों से नहीं देखा जा सा। खुर्दबीन से देखने पर पता लगता है कि लाल रक्त कीटाणु का व्यास लगभग १/३२०० इंच तथा मोटाई लगभग १/१२०० इंच होती है। यदि एक करोड़ लाल कीटाणु एक स्थान पर सटाकर रखे जावें तो वे केवल एक वर्ग करोड़ लाल कीटाणु आकार में कुछ बड़े होते हैं। इनका व्यास १/२५०० इंच होता है। अनुमानतः हर पाँच सौ लाल कीटाणुओं पर एक श्वेत कीटाणु होता है।

श्वेत कीटाणु सैनिक है और लाल कीटाणु नागरिक है। जब कोई रोग कीटाणु शरीर में घुसता है तो श्वेत कीटाणु उसे मार डालते हैं, किन्तु यदि रोग कीटाणु बलवान हुए और श्वेत कीटाणु दुर्बल हुए तो रोग कीटाणु मारते-काटते आगे बढ़ने लगते हैं। परमात्मा ने हमारे शरीर की रचना बड़ी विचित्र की है और रोगों की रोकथाम के लिए अनेक संस्थान बना रखे हैं। जहाँ-जहाँ शरीर में जोड़ है वहाँ-वहाँ श्वेत कीटाणु रूपी सैनिकों की छावनियाँ बनी हैं। और वहाँ श्वेत कीटाणुओं की एक सेना मौजूद रहती है। सबसे बड़ी छावनी व सुदृढ़ किला थाइरोयड ग्रन्थि में है जहाँ अरबों-खरबों की संख्या में इनकी सेना मौजूद रहती है।

रोग कीटाणुओं की एक विशेषता यह है कि जब वे शरीर के किसी एक भाग से प्रवेश करते हैं, तो एक से दो और चार से आठ आदि क्रम से अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं। और श्वेत कीटाणुओं से युद्ध करते हुए रक्त नलिकाओं द्वारा हृदय की ओर बढ़ने लगते हैं। शरीर के जोड़ों पर जहाँ सैनिकों की छावनी है वहाँ जमकर लड़ाई होती है। बहुधा यहीं पर रोग-कीटाणु हार खा जाते हैं। और आगे नहीं बढ़ पाते। किन्तु यदि रोग कीटाणु सशक्त हुए और हमारे सैनिक कमजोर पड़ गये तो वे इन छोटे किलों पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं और आगे बढ़ चलते हैं। सबसे बड़ी सेना थाइरायड ग्रन्थि में रहती है, यहाँ सैनिकों की संख्या अधिक होती है और शरीर के अन्य भाग में भी श्वेत कीटाणु सैनिक भाग कर यहाँ सहायता देने पहुँच जाते हैं। यहाँ पर बड़ी भयंकर लड़ाई होती है और उस युद्ध से इतनी ऊष्मा पैदा होती है कि सारा शरीर गर्म हो जाता है। और लोग कहने लगते हैं कि बुखार आ गया। इस किले पर विजय प्राप्त करना साधारण रोग कीटाणुओं के वश की बात नहीं है। यहाँ के युद्ध में रोग कीटाणु व श्वेत कीटाणु भारी संख्या में मारे जाते हैं और उनकी लाशें मवाद, बलगम व दस्त आदि विजातीय द्रव्यों के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। जब शरीर में कोई रोग हो जाता है तो मनुष्य औषधि का सहारा लेता है। औषधियाँ श्वेत कीटाणुओं की संख्या को बढ़ाती हैं और उनको बलवान बनाती हैं ताकि वे रोग कीटाणुओं से युद्ध में विजय प्राप्त कर सकें।

क्रमशः

※※※

सद्गुरू तेरे शरणों में मैं आया।

-अंशुमान देव मालवीय

मेरे जीवन की है यह अभिलाषा तेरे चरणों का मैं दास बनू
नहीं है मुझे इस संसार से मोह व माया
तेरे चरणों में आने से यही है फायदा
थे तेरे शिष्य सब भोगी
सद्गुरु! तुमने उनको बना दिया योगी
हम सब शिष्य सब थे भोग के पथिक
इस पथ के पथिक को करना सद्गुरु तुम भवसागर से पार
नही है इस संसार मे मेरा कोई अपना सद्गुरु
एकमात्र तुम ही हो मेरे अपने

सद्गुरु ! कर तेरे चरणो का वन्दन
सद्गुरु हुआ मैं भवसागर से पार
इस मृत्यु लोक से हुआ मैं अजर अमर
कर तेरे चरणो का वन्दन
नही चाहिए दुबारा यह पापी जीवन
मुझे बस चाहिए सद्गुरु ! बस तेरी भक्ति
नही चाहिए मुझे धन व वैभव
मुझे चाहिए सद्गुरु! थोड़ा सा चरण रज
इस जीवन मे है कष्ट बहुत
नही है सुख, बहुत है अगर सुख तो
वह है तेरी भक्ति मे सद्गुरु !
सद्गुरु! है तुझे कोटि-कोटि प्रणाम
नही है आशा मुझे किसी से
मुझे है अगर आशा तो एकमात्र गुरुदेव तेरे से।

सद्गुरु! तेरे शरणों मे मै आया
सारी दुनियाँ छोड़ बस तेरा ही गुन गाया
नही है दुनियाँ मे कोई और सहारा
एकमात्र सद्गुरु तुम्ही हो मेरा सहारा
इस संसार मे बहुत कष्ट पाया
इस संसार मे अगर थोड़ा सुकून पाया
तो सद्गुरु बस तेरे शरणो मे मै पाया
सद्गुरु तेरे शरणों मे मै आया।

योग साधना में जप का महत्व

सुधाकर उपाध्याय

शास्त्र ने कर्म के तीन विभाग किए हैं (१) सञ्चित (२) प्रारब्ध (३) क्रियमाण। जीव जब जननी के उदर मे आता है तो उसे सञ्चित में से प्रारब्ध भोगने को मिलता है और आगे जो नया कर्म करना है, उसे क्रियामाण कहते हैं। इसमें पाप और पुण्य दोनों मिश्रित रहते है, परन्तु तीन ऐसे पुनीत कर्म है, जिनसे पाप का भुगतान जल्द करके जीव शुभ कर्मों का भागी होता है। पहला कर्म (सत्संगति) सिद्धांना संगति (२) जप (३) ध्यान।

अत: विवेक चूड़ामणि में लिखा है-

दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रह हेतुकम।
मनुष्यत्वम् मुमुक्षत्वं महापुरुष संक्षय:।।

इस पृथ्वी पर तीन वस्तुएँ दुर्लभ है (१) मानव जन्म क्योंकि इसी योनि मे ईश्वर का उत्कृष्ट प्रतिविम्ब आता है (२) मुक्ति की प्रबल आंकाक्षा (३) महान पुरुषों का आश्रय। ऐसे महापुरुष यदि सद्‌गुरु के रूप मे मिलें तो उस मनुष्य के भाग्य का क्या कहना। क्योंकि महान पुरुषों का निवास तीर्थ, उनके मुखार विन्द से निकले वचन शास्त्र तथा उनके आचरण ही सद्‌कर्म कहे जाते है। ऐसे दिव्यात्माओं मे जाति रूप, कुल, विद्या का भेद नही माना जाता, उनके देह विस्तृत स्पन्दन से ही लोग पवित्रता से भर जाते है। ऐसे सिद्ध पुरुषों के द्वारा मंत्र ही जप के लिए उपयुक्त होता है। जप क्या है ? एकान्त मे बैठकर ईश्वर के नाम की सतत पुनरावृत्ति को ही जप कहते है। जप के पूर्व यम, नियम, आसन और प्राणायाम तथा प्रत्याहार, धारण ध्यान और समाधि है तथा जप इस की आधार शिला है। अत: भगवान पतंजलि देव ने **''तज्जप: तदर्थ भावनम्''** कहकर एवं भगवान व्यास देव ने गीता मे जगदात्मा श्री कृष्ण के मुख से अपना स्वरूप प्रतिपादित किया है।

''यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि'' यज्ञ मे हवन होता है तो जप, यज्ञ से प्राण वायु और अपान वायु की एक-रुपता के साथ प्रभु के मंगलमय विग्रह के चिन्तन मे समर्पण रूप हवन होता है। जप के द्वारा चित्त की वृत्तियाँ सदैव बहिरंग से अर्न्तमुखी होने मे सहायता मिलती है। **''अपाने जुह्वति प्राणं प्राणापाने तथा परे''** इससे जप की उपादेयता स्पष्ट है। जप, सकाम तथा निष्काम दो रीति से किये जाते है।

पूजा कोटि समं स्रोतं, स्रोत कोटि समो जप: कहकर कुलार्णव तन्त्र में जप को पूजा और स्रोत से श्रेष्ठ कहा है, भेद दृष्टि से भी जप की चार श्रेणियाँ कही गई है। यथा-

विधि यज्ञात् जपयज्ञो।
विशिष्टो दशभि: गुणै:।।
उपांश: स्यात् शत गुण:।
सहस्त्रो मानस: स्मृत:।।

क्रमोतर एक से एक श्रेष्ठ है, विधियज्ञ, जप यज्ञ, उपांशु तथा मानस जप, जिसमें होठ न हिले, उन से जप होता रहे। आसनों पर बैठकर ही जप करना चाहिए। प्राय: सकाम जप के लिये-

कृष्णा जिने भवेन्मुक्तिः मोक्ष श्री व्याघ्र चर्मणि।
कुशासने ज्ञान सिद्ध सर्व सिद्धस्तु कम्बले।।

कृष्ण मृग चर्म पर मुक्ति चाहने वाले, लक्ष्मी की कामना वाले बाघम्बर पर, ज्ञान के इच्छुक कुश पर तथा कम्बल पर सर्व सिद्धियों का विधि जप का विधान है उसी प्रकार निषेध भी किया गया है।

वस्त्रासने च दारिद्रम पाषाणे रोग सम्भवः।
मोदिन्यां दुख माप्नोति काष्ठे भवति निष्फूलं।।

कहकर कपड़ा पत्थर, भूमि और लकड़ी पर बैठने से जप पूर्ण नहीं होता। साथ-साथ जप करने के समय संख्या का ध्यान रखा गया है। संभव है वह प्रारम्भिक अभ्यास डालने के लिए हो, माला की संख्या १०८ दाने, ५४ या २७ ही होने चाहिए। माला न होने पर कर अभ्यास हो जाये, पर श्वांस प्रति श्वांस जप श्रेष्ठ माना गया है। मन की एकाग्रता ही श्रेष्ठ है और उसी के लिए जप भी है।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुआ तो सब जग फिरै, यह है सुमरन नाहि।

कहकर कबीर दास जी ने बतलाया है कि-

सोवत जागत चलत उठाने।
कहै कबीर हम एक ठिकाने।

हाँ इतना अवश्य है कि हम जिसका स्मरण कर रहे है उसके तरह ही पवित्र बनकर जप करें- **देवो भूत्वा देवं यजेत्** देव पूजा के पहले हमें स्वयं देवता के समान पवित्र बन जाना चाहिए, पूजा के बाद या पूजन के पहले ही जप कर लेना श्रेयस्कर है-

एकदा वा भवेत पूजा, न जपेत पूजनं बिना।
जप्यन्ते वा भवेत् पूजा, पूजान्ते वा जपेन्मनुम।।

दृढ़ श्रद्धा और अडिग विश्वास के जप का होना श्रेष्ठ है क्योंकि मन्त्र का अर्थ कहा गया है **''मननात् मायेत् मन्त्र''** जो मनन से ही त्राण करता है वह मन्त्र है। अत:

मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे भुरौ
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृसी।।

उपरोक्त में भावनानुकूल ही सफलता मानी गई है उन्हें गुप्त खजाने की तरह सुरक्षित रखने की नीति भी बतलाई गई है। यथा-

योग युगति तप मन्त्र प्रभाऊ।
फुरै तवै जप करिय दुराऊ।।

नाम और नामी के उच्चारण तथा स्वरूप के चिन्तन के सम्बन्ध मे गोस्वामी तुलसी दास जी

बहुत विशद् वर्णन किया है–

देखियत रूप नाम आधीना,
रूप ज्ञान नहिं नाम विहिना।
रूप विशेष नाम बिनु जाने,
करतल गत ने परहि पहचाने।।
सुमिरिय नाम रूप विनु देखे,
आवत ह्रदय सनेह विशेषे।
नाम जीह जपि जागहिं योगी,
विरति विरञ्चि प्रपञ्च वियोगी।
साधक नाम जपहिं लव लायें,
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये।।

अर्थ स्पष्ट ही है। नाम जप में न तो घबराहट हो न श्रद्धा में कमी पड़े, यह अध्यात्म चिन्तन है। शनैः शनैः समय पर ही फल मिलता है।

कालेन परिपच्यन्ते कृषि गर्भादयो यथा।
एवमात्म विचारोऽपि शनैः कालेन पच्यते।।

दो उदाहरण देकर समझाया गया है। खेत जैसे गर्भ समय पर जैसे फल देते हैं, उसी तरह आत्मा विचार को भी समझना चाहिए। अतः **'दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़ भूमिः'** कहकर इसी सिद्धान्त को योगोपदेष्टाने कहा है।

जपने योग्य यन्त्रों में प्रायः प्रणव का उच्चारण किया जाता है। शावर मन्त्रों को छोड़कर, क्योंकि वे भगवान भूत भावन की कृपा से स्वतः सिद्ध हैं–

अनमिल आखर अरथ न आपू।
प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।।

कुछ मन्त्र स्वतः प्रणवमय हैं, राम नाम आदि जैसे चीफ जस्टिस के लिए गये फैसले स्वयं रुलिंग बन जाते हैं, उसी तरह सिद्ध पुरुषों के द्वारा निर्गत वाक्य स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। रत्नाकर ब्राह्मण होते हुए भी कन्धे पर यज्ञोपवीत तथा श्वान साथ लेकर जंगल के राह में लुटेरे का काम करते थे, परन्तु ऋषियों के आदेश ने उन्हें क्या से क्या बना दिया, महर्षियों के मुख से निकले राम राम को मरा मरा जपते उनके शरीर पर दीमकों का ढेर लग गया। रत्नाकर से वे महर्षि बाल्मीकि हो गये। चित्त की एकाग्रता से किया गया जप सामर्थ्यवान बन जाता है। वह त्रिपुटी लग जाती है कि ध्याता में ही ध्येये के गुण, रूप का समावेश हो जाया करता है। उसे अपने स्वरूप का भान ही नहीं रहता।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति।
यद्वाचा वदति तद्कर्मणा करोति।।

यत्कर्मणा करोति तद्भि सम्पद्यते-यह नियम है। साधक जैसा ध्यान करता है, अन्ततोगत्वा वैसा ही हो जाता है। ध्यान से नहीं माया के द्वारा दशकन्धर इसीलिए जगद्जननी जानकी के पास राम का रूप बनाकर कभी न जा सका। शनैः शनैः जप की पूर्णता में मन्त्र ही देवता बन जाते हैं। अन्त में मन्त्र, देवता और मन एक रूप हो जाता है। जप की पराकाष्ठा तभी समझनी चाहिए जब-

मन्त्र रूपो भवेद् देवः देवरूपो गुरुः भवेत्।
गुरुरूपो भवेदात्मा आत्मरूपो गुरुः भवेत्।।

मन में पहुँचकर मन्त्र मनोगत, बुद्धि में बुद्धि गत होकर वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं, जहाँ से संसार की पश्यपन्नयिन पश्यति की धारा प्रवाहित होती रहती है।

हंस गायत्री श्वास प्रतिश्वास जप के विधान में वर्णित है। २१६०० बार श्वास दिन भर चलता है। २४ घंटे में जप भी इतना ही किया जाता है। हकार, सकार का लोप होने पर प्रणव शेष भी रहता है।

हकारं च सकारं च लोपयित्वा प्रयोजयेत्।
सन्धिवै पूर्ण रूपाख्यं ततो ऽसौ प्रणवेभवेत्।।

महात्मा ब्रह्मानन्द जी ने अपने भजन में कहा है-

सोऽहं शब्द विचारो साधु सोऽहं शब्द विचारो रे।
माला करते फिरत नहीं है जीभ न वर्ण विचारो रे।
अजपा जाप होत घट माहीं ताकी ओर निहारो रे।
ह अक्षर ते श्वास उठाओ सो में जाय बिठारो रे।
हंसो उलटि होत है सोहं योगी जन निरधारो रे।
सब इक्कीस हजार मिलकर छः सौ होत सुमारो रे।
उठत, बैठत, सोवत, जागत मन में जपो सुखारो रे।
जो जन चिन्तन करै निरन्तर छोड़ जगत व्यवहारो रे।
ब्रह्मानन्द परम पद पावै मिटै जन्म संसारो रे।

इस प्रकार किया गया जप और नामी के स्वरूप का चिन्तन अल्पकाल में ध्यान का रूप धारण कर लेता है, जिसके द्वारा अलौकिक ध्यान जनित सुखों का अनुभव करता हुआ योगी परम पद का अधिकारी बन जाता है और जीवन का परम लक्ष्य सिद्ध हो जाता है तथा जीव कृतार्थ होकर अह्लादित हो जाता है।

***

नमामि नारायणपादपंकजम्

नमामि नारायणपादपंकजं करोमि नारायणपूजनं सदा।
वदामि नारायणनाम निर्मलं स्मरामि नारायणतत्वमव्ययम्।।

श्रीनाथ नारायण वासुदेव श्रीकृष्ण भक्तप्रिय चक्रपाणे ।
श्रीपद्मनाभाच्युत कैटभारे श्रीराम पद्माक्ष हरे मुरारे ।।

अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।।

ध्यायन्ति ये विष्णुमनन्तमव्ययं हृत्पद्ममध्ये सततं व्यवस्थितम्।
समाहितानां सततामयप्रदं ते यान्ति सिद्धिं परमां च वैष्णवीम्।।

क्षीरसागरतरंगशीकरासारतारचितचारुमूर्तये ।
भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः।।

'मैं सदा नारायण के चरण कमलों में नमस्कार करता हूँ, नारायण का पूजन करता हूँ, नारायण के निर्मल नाम का उच्चारण करता हूँ और अविनाशी नारायणतत्व का स्मरण करता हूँ। भगवान् के श्रीनाथ, नारायण, वासुदेव, श्रीकृष्ण, भक्तप्रिय, चक्रपाणि, श्री पद्मनाम, अच्युत, कैटभारि, श्रीराम, पद्माक्ष, हरि, मुरारि, अनन्त, बैकुण्ठ, मुकुन्द, कृष्ण, गोविन्द, दामोदर, माधव–इन नामों का उच्चारण करने में समर्थ होने पर भी कोई उच्चारण नहीं करता, अहो ! मनुष्यों का व्यसनों की ओर अभिमुख होना कैसी विडम्बना है। जो लोग हृदयकमल के मध्य में निरन्तर स्थित, समाधिनिष्ठ योगियों के लिये सदा अभयप्रद, अविनाशी एवं अनन्त भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं, वे परम वैष्णवी सिद्धि को प्राप्त होते हैं। जिनकी सुन्दर मूर्ति क्षीरसागर की लहरों की बूँदों के निरन्तर वर्षन से तारिकाओं से खचित (गगन-सी) दीख पड़ती है तथा जो शेषनाग के फण रूपी शय्या पर शयन करने वाले है, मधु-नामक असुर के शत्रु उन लक्ष्मीपति को नमस्कार है।'

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008

जून 2000

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री ______________________

____

____

कल्याणोल्लाससीमा कलयतु कुशलं कालमेघाभिरामा
काचित् साकेतधामा भवगहनगतिक्लान्तिहारिप्रणामा।
सौन्दर्यहीणकामा धृतजनकसुतासादरापांगधामा
दिक्षु प्रख्यातभूमा दिविषदभिनुता देवता रामनामा।।

(शार्ंगधरपद्धति)

'परम कल्याण और उल्लास के मर्यादास्वरूप, श्यामल मेघ के समान सुन्दर कान्तिवाले तथा साकेत—अयोध्या में निवास करने वाले, प्रणाम मात्र से संसार के कठिन क्लेशों (जन्म-मरणादि दुःखों) को दूर करने वाले, अपने अनन्त सौन्दर्य से कामदेव को लज्जित करने वाले एवं जनकनन्दिनी भगवती सीता के नेत्रों में सदा निवास करने वाले, देवताओं द्वारा अभिवन्दित एवं दसों दिशाओं में प्रख्यात व्याप्ति वाले देवाधिदेव (परब्रह्म) भगवान् श्रीराम सदाचारपरायण समस्त विश्व का मंगल करें।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326